मूल्य २५/-
ईष (आश्विन) ऊर्जस् (कार्तिक) सहः (मार्गशीर्ष)
शरद् ऋतु २००३
पूर्णांक- १५
ओ३म्
अवनी
सनात्सनीडा अवनीः अवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः
काशी के आर्य समाज
आर्यसमाज बुलानाला
आर्यसमाज भोजूबीर
आर्यसमाज लल्लापुरा
वेदों में पशु पक्षियों का महत्व
मनुस्मृति और उसकी सामाजिक व्यवस्था
ऋषि दयानन्द का दलितोद्धार...
महर्षि दयानन्द की मानवता को देन
वेदकालीन ऋषिकायें
रुपये की माँ पहाड़ चले
जागरूक महिलाओं द्वारा संचालित निष्पक्ष वैदिक त्रैमासिक पत्रिका

स्मृति के झरोखे से...
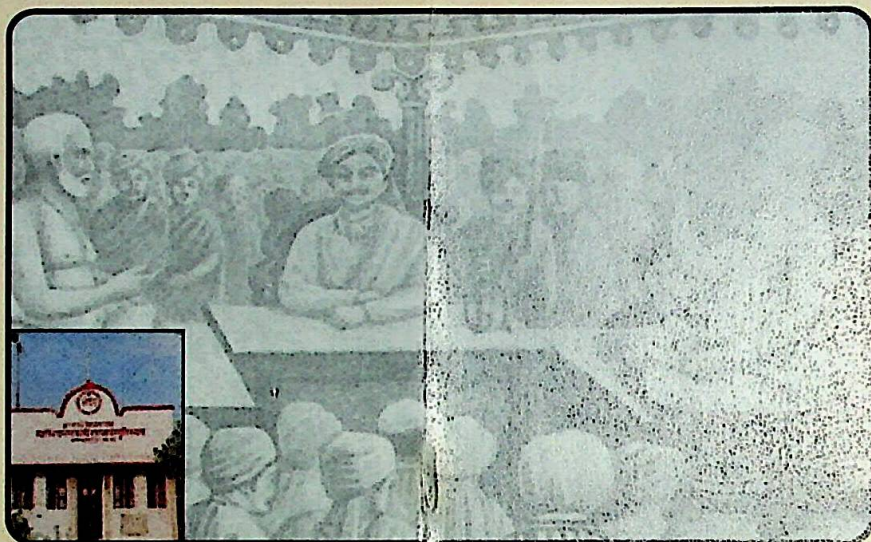
काशी शास्त्रार्थ का एक दृश्य, इनसेट में शास्त्रार्थ स्थल

शास्त्रद्वन्द्वांकचन्द्रेब्दे वैक्रमे कार्त्तिके सिते।
भौमे भास्वत्तिथौ दिव्ये मूर्तिपूजा विनिर्णये।।
विशुद्धानन्दसुप्रज्ञैर्बालशास्त्र्यादिभिर्बुधैः।
शास्त्रार्थमकरोत् साकं दयानन्दो यतिर्महान्।।

(काशी के प्रमुख विद्वान् स्वामी विशुद्धानन्द पं. बालशास्त्री आदि के साथ महर्षि दयानन्द सरस्वती का कार्त्तिक शु. १२ वि.स. १९२६ को मूर्तिपूजा विषयक शास्त्रार्थ हुआ)।

ओ३म्

सनात्सनीडा अवनीः अवाता व्रता रक्षन्ते अमृताःसहोभिः।
पुरु सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम्।। ऋक्।।

क्षमाशीला अवनी (पृथ्वी) जैसे समस्त पदार्थों की रक्षा करती है उसी प्रकार परिवारस्थजन सत्य, विद्या, धर्मादि का आचरण कर मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

अक्टूबर–दिसम्बर २००३
वर्ष ४ अंक ३

आश्विन–मार्गशीष २०६०
२१२६ ग्रीष्म ऋतु

कार्यालय–
'अक्षयम्' एस. २/५०३ क १–४
सिकरौल, वाराणसी कैण्ट–२२१००२
फोन : २३८२७८६

कम्प्यूटर डिजाईन– पारस मुद्रण
एस. १/१३२ नरायनपुर
भोजूवीर, वाराणसी
फोन–२५८४४७६

आजीवन सदस्य – ६००/–
पंचवर्षीय सदस्य – २००/–
द्विवार्षिक सदस्य – १००/–
विदेश में वार्षिक – १५ पाउण्ड
३० डालर यू.एस.

मूल्य – २५/–
(आजीवन सदस्य अपनी सदस्यता शुल्क के साथ एक पासपोर्ट साइज की फोटो भी प्रेषित करें)

इस अंक में..

अनुक्रम

सेवा में,

माननीया सम्पादिका महोदया,
(श्रद्धेया डॉ० माधुरी बहन जी)
'अवनी', वाराणसी।

सादर वन्दन !

"अवनी" त्रैमासिक पत्रिका वर्षा ऋतु २००३ (जुलाई–सितम्बर) अंक प्राप्त हुआ। कोटिशः धन्यवाद। आपके इस अंक में *"वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है"* लेखक–ब्र० राजेन्द्रार्य शीर्षक लेख अत्यन्त सारगर्भित व ज्ञानवर्धक लगा जिसे पढ़कर ऐसा प्रतीत हुआ कि माननीय लेखक महोदय ने वस्तुतः एक कटु सत्य का चित्रण सप्रमाण बड़े ही सरल भाषा में किया है जिसे कि आज के समाज को सामाजिक व राष्ट्रीय उत्थान हेतु समझने, जानने व अपनाने तथा स्वयं के पारिवारिक उत्थान व उन्नति हेतु भी समस्त मानव बन्धुओं वेदानुकूल चलने की दिशा में पहलू करना चाहिये यह आवश्यक है। "अवनी" के इसी अंक में भदोही के मान्या लेखिका श्रीमती मञ्जु प्रकाश द्वारा लिखा व छपा लेख "बेटी के लिए कैसा वर ढूंढे" भी अत्यन्त ही दिशा ज्ञान प्रदान करने व चेतना जागृत करने वाला है। आज के परिवेश व सामाजिक व्यवस्था तथा अनेकों दुखित जनों को देखते हुए उपरोक्त विषयक लेख के तथ्य विचारणीय, ग्रहणीय व लाभप्रद हैं। वस्तुतः आर्य समाज की समस्त शाखाओं–इकाईयों व संस्थाओं तथा विशेषकर समाज की युवाशक्ति "आर्य वीर दल" को इस लेख से दिशा प्राप्त कर कुप्रथा व कुंठित जनों की ओर ध्यान देना तथा समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने की एवं वैदिक भावना से ओत–प्रोत परिवार व समाज की संरचना व सुव्यवस्था करने की दिशा में एक जुट होकर रचनात्मक व ठोस कार्य करना चाहिये। तभी बेटियों के लिये अनुकूल वैदिक परिवार व संस्कारवान वर की प्राप्ति सुलभ हो सकेगी तथा बेटियां व बेटे वेदानुकूल सुखी दाम्पत्य जीवन हर्ष पूर्वक व्यतीत कर पायेगें और तभी प्रत्येक परिवार व सम्पूर्ण समाज का विकास व उत्थान सुगमता से हो पायेगा जो कि राष्ट्रीय उन्नति की एक महत्वपूर्ण कड़ी होगी।

उपरोक्त दोनों विषयक लेखों के लेखकों को समाज का व पाठकों का पथ प्रदर्शन करने हेतु "अवनी" के माध्यम से कोटिशः धन्यवाद व बधाई। इसी के साथ माननीय सम्पादिका "अवनी" को भी हृदय से शुभकामना जिन्होंने इस प्रकार के विचारशील लेखों को अपनी पत्रिका में स्थान देकर "अवनी' के पाठकों को दिग्ज्योति प्रदान की।

इस प्रकार के ज्ञानवर्धक, दिशासूचक, विचारवान् लेखों से "अवनी" सदैव परिपूर्ण व सजी रहे और यह पत्रिका सम्पूर्ण मानव समाज व राष्ट्र के उत्थान–उन्नति की पथ प्रदर्शक पत्रिकाओं की श्रेणी में सर्वोत्तम व शीर्ष बनें हमारी यही अंतःकरण से शुभ कामना "अवनी" व इसकी व्यवस्था संचालन में लगी समस्त आर्यनेत्रियों महिलाओं–बहनों के लिये है।

–गौतम अरोड़ा (आर्यसभासद)
आर्य समाज, लल्लापुरा, वाराणसी

आदरणीया बहन जी,

ईश कृपया *अत्र कुशलं तत्राऽपि भवेत्*। निवेदन है कि आपकी पत्रिका 'अवनी' का ग्रीष्म ऋतु, २००३, पूर्णांक १३ मुझे कुछ दिन पूर्व प्राप्त हुआ था। एतदर्थ हार्दिक धन्यवादी हूँ।

इसके लेख प्रभावशाली व उपयोगी हैं। इस पत्रिका से मेरा पूर्व परिचय न था। मुझे इसमें *'मोक्ष का स्वरुप', 'जर्मनी का एक ऋषि', 'वर्ण व्यवस्था आज भी प्रासंगिक', राजस्थान की महिलायें'*, आदि पसन्द आए। मोक्ष से वापसी के वैदिक प्रमाण अप्राप्य हैं, अन्यत्र। मोक्ष संबंधी लेख में इस कमी को दूर किया है। साधुवाद भेजता हूँ।

पत्रिका के अन्तिम पृष्ठ पर दिया भगत सिंह का वास्तविक चेहरा पेश नहीं करता। यह उनके चित्र की अनुकृति प्रतीत नहीं होती। शेष कुशल,
सादर, सधन्यवाद !

विनीत
इन्द्रजित् देव
यमुनानगर (हरियाणा)

काशी

महर्षि दयानन्द और आर्य समाज

धर्म और संस्कृति की नगरी काशी का आर्य समाज के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान है। आर्य समाज के संस्थापक जनचेतना के पुरोधा वेदोद्धारक महर्षिदयानन्द का आगमन यहाँ पर सात बार हुआ। काशी के द्वितीय प्रवास काल में १६ नवम्बर १८६६ में पौराणिक विद्वानों के साथ **"मूर्तिपूजा वेद विरूद्ध है"** विषयक विश्व प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ जिसमें दयानन्द विजित हुए। तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं में इस शास्त्रार्थ की व्यापक चर्चा रही।

काशी शास्त्रार्थ के बाद ही उन्होंने सम्पूर्ण भारत में परिभ्रमण किया। महर्षि ने काशी प्रवास काल में जहाँ 'सत्यशास्त्र पाठशाला' की स्थापना की, वैदिक यन्त्रालय की स्थापना की (जहाँ सत्यार्थ प्रकाशादि १६ ग्रन्थों का प्रथम प्रकाशन हुआ) वहाँ उन्होंने काशी के लक्ष्मीकुण्ड स्थित महाराजा विजयानगरम् के उद्यान में चैत्र शु. ६ वि.सं. १९३६ में आर्यसमाज की स्थापना की। जो ५ वर्षों बाद शहर के मध्य बुलानाला पर स्थानान्तरित कर दिया गया। इसके भवन का ऊपरी भाग बिड़ला मन्दिर की शैली लिये हुए है।

इसके अनन्तर कतिपय आर्य समाजों की स्थापना हुई। वर्त्तमान में वाराणसी जिले के अन्तर्गत १३ आर्य समाज अवस्थित हैं। (१) आ.स. कोनिया (२) आ.स. रेमा (३) आ.स. काशी बुलानाला (४) आ.स. जैतपुरा (५) आ.स. खोजवाँ (६) आ.स. लल्लापुरा (७) आ.स. आनन्द बाग–दुर्गाकुण्ड (८) आ.स. का. हि.वि.वि. (९) आ.स. भोजूबीर (१०) आ.स. जंगीगंज (११) आ.स. सेवापुरी (१२) आ.स. पिण्डरा बाजार (१३) आ.स. कठौली आदि।

जिसमें कुछ सक्रिय समाज हैं और उनका अपना एक गौरवपूर्ण इतिहास है। यहाँ स्थानाभाव से दो का ही उल्लेख किया जा रहा है–

आर्य समाज लल्लापुरा–

यह वाराणसी के लल्लापुरा नामक मुहल्ले में अवस्थित है। प्रथमतः आर्य युवक सभा की स्थापना ८ दिसम्बर १९३५ में हुई जो कालान्तर में आ.स. लल्लापुरा के नाम से परिवर्तित हो गया। जिसकी स्थापना ५ मार्च १९४३ को हुई। शिलान्यास पदवाक्यप्रमाणज्ञ पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु तथा भवन का उद्घाटन संसद सदस्य श्री प्रकाशवीर शास्त्री द्वारा ६ नव. १९६५ को हुआ। वर्त्तमान में यह समाज सर्वसुविधा सम्पन्न, सक्रिय समाज में गिना जाता है।

आर्य समाज भोजूबीर–

इस समाज की स्थापना ६ नवम्बर १९२४ में हुई। इसके संस्थापक सदस्य हैं– श्री राजेन्द्र नाथ सिन्हा, श्री रामाशंकर, श्री काशी प्रसाद माथुर तथा श्री चन्द्रिका प्रसाद। स्थापना के पश्चात् मुख्य स्तम्भ रहे– श्री कृष्णानन्द श्री नानक राम आर्य पथिक, श्री सीताराम आर्य (लेखिका के पिता जी) श्री कालिका प्रसाद तथा श्री खेमराज जी। वर्त्तमान में यहाँ एक म. द. बाल मन्दिर जू.हा. स्कूल चल रहा है और यह भी सुविधा सम्पन्न सक्रिय समाज के अन्तर्गत गिना जाता है।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने काशी प्रवास काल में तीन महत्वपूर्ण कार्य किये (१) पाठशाला की स्थापना (२) वैदिक यन्त्रालय की स्थापना तथा (३) आर्य समाज की स्थापना।

'महर्षि दयानन्द के पत्र व्यवहार और विज्ञापन' से हमें चतुर्थ अभिलाषा का परिज्ञान होता है वह था काशी से एक 'आर्य प्रकाश' नामक पत्र का प्रकाशन, जिसे वे अपने जीवन काल में समयाभाव के कारण न कर सके। आर्य समाज के सुदीर्घ ऐतिह्य के अध्ययन से ज्ञात होता है आर्य समाज के तेजस्वी नेता डा० केशवदेव शास्त्री ने 'न्रव–जीवन' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन काशी से प्रारम्भ किया था जो शास्त्री जी के अमेरीका चले जाने के कारण इन्दौर से प्रकाशित होने लगा। 'अवनी' का प्रकाशन उसी श्रृंखला की एक कड़ी है जिससे महर्षि की अभिलाषा जन्य अभाव की पूर्ति हो सके।

काशी सदा से ही ख्याति प्राप्त, अल्पख्याति प्राप्त अलब्धख्याति प्राप्त साधु संतो, संन्यासियों विद्वानों की नगरी रही है। आर्य समाज के भी साधु संन्यासियों, विद्वान् विदुषियों की भी इसमें लम्बी सुदीर्घ परम्परा रही है जिन्होंने अपनी तपःस्थली व कर्मस्थली काशी को चुना।

—तर्कपुका

सुधा-कण

न वा उ मां वृजने वारयन्ते,
न पर्वतासो यदहं मनस्ये
मम स्वनात् कृधुकर्णो भयात,
एवेदनु द्यून् किरणः समेजात्

—ऋग्. १०/२७/५

शब्दार्थ– (माम्) मुझको (वृजने) युद्ध में (न,वै,उ) कोई नहीं (वारयन्ते) रोक सकते हैं (अहम्) मैं (यत्) जो कुछ (मनस्ये) मन से सोच लेता हूँ (पर्वतासः) पर्वत भी (न वारयन्ते) नहीं रोक सकते हैं। (मम) मेरी (स्वनात्) आवाज से (कृधुकर्णः) मन्द कर्ण कम सुनने वाला बहरा भी (भयाते) डर जाता है, (एव इत्) इसी प्रकार (अनुद्यून्) प्रतिदिन (किरणः) किरण, किरणों वाला सूर्य भी (सम एजात्) काँप जाता है।

English Tr. : None can check me in the battle - field. Not even a mountain can hinder my decision. A deaf in frightened listening to my dreadful voice. Similarly the sun also trembles to learn my determination.

—पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

वेदों में पशु-पक्षियों का महत्त्व

डा० आशा रानी राय

परमात्मा की सृष्टि में मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है। यह विवेकशीलता का गुण ही उसे अन्य प्राणियों जैसे पशु–पक्षी इत्यादि से पृथक् करता है किन्तु बौद्धिक स्तर पर इन पशु–पक्षियों से पृथक् होते हुए भी मानव जीवन के लिए प्राचीन काल से ही पशु एवं पक्षियों का नाना प्रकार की उपयोगिताएं द्रष्टव्य हैं। पशुओं ने मनुष्य समाज को आहार के अनेक पदार्थ जैसे दूध, दही घृत, औषधि, वस्त्र के लिए ऊन, चर्म , ईंधन, खाद, वाहन तथा रक्षा इत्यादि प्रदान किये हैं तथा वे आज तक मनुष्यों को ये सुविधाएं प्रदान करते आ रहे हैं। प्राचीन काल से ही पशु धन के रूप में समझे जाते रहे हैं। उनका महत्व अन्य किसी भी सम्पत्ति से कम नहीं है। आत्मज्ञान को वर के रूप में माँगने वाले नचिकेता को इससे विरत करने के लिए प्रलोभित करते हुए यमराज उससे अन्य सम्पत्तियों के साथ–साथ यथेच्छ पशुओं को भी माँगने के लिए कहते हैं–

शतायुषः पुत्र पौत्रान्वृणीष्व बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान्।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि।।

(कठोपनिषद, १/१/२३)

पशु एवं पक्षियों की यथावसर उपयोगिता के आधार पर इनका पृथक्–पृथक् महत्व है। पशुओं एवं पक्षियों की बोलियों एवं उनके संकेतों से प्रकृति में होने वाली शुभाशुभ घटनाओं का ज्ञान प्राप्त होता है। इतना ही नहीं जहाँ मनुष्यों के लिए यातायात का साधन बनते थे वहीं पक्षी संदेशवाहक के रूप में इनका उपकार करते थे।

पशु–पक्षियों की इन उपयोगिताओं के कारण ही वेदों में मनुष्य–समाज के लिए इन्हें अत्यन्त आवश्यक मानते हुए इनके पालन तथा रक्षण के विशेष महत्व का प्रतिपादन किया गया है। जैसा कि यजुर्वेद में कहा गया है–

'यजमानस्य पशून्पाहि' – (यजु० १/१)

पशु घर में भी हों–

'उपाहूताऽइह गावऽउपहूताऽअजावयः (यजु० ३/४३)

मानव–जीवन के साथ–साथ यज्ञों में भी अनेक प्रकार के पशुओं की आवश्यकता होती थी। *'शतपथ ब्राह्मण'* में उल्लिखित है–*"कतमो प्रजापतिरिति यज्ञ इति। कतमो यज्ञ इति पशुरिति।"* यहाँ पशु को यज्ञ और प्रजापति कहा गया है। इसका अभिप्राय यही है कि पशुओं से ही मनुष्यों का पालन होता है तथा यज्ञ भी उन्हीं से सम्पन्न होते हैं।

विभिन्न पालनीय एवं रक्षणीय पशुओं में गाय सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी मानी गई है। वेद गाय को अहिंसनीय कहते हैं। यज्ञों में प्रधान वस्तु घृत गायों से ही प्राप्त होता था। यज्ञों में ऋत्विजों को दक्षिणास्वरूप गाय ही देने का विधान था–

'तंह कुमारं सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाविवेश सोऽमन्यत्।"

(कठोपनिषद् १/१/२)

दक्षिणा शब्द अनेक स्थलों पर गाय का पर्यायवाची बन गया था। क्रय–विक्रय के साधन के रूप में भी गाय का महत्व था। ऋग्वेद के एक मन्त्र में वामदेव ऋषि का कथन है कि कौन मनुष्य ऐसा है जो मेरे इन्द्र को दस गायों में खरीद रहा है–

'क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः।" (ऋग्वेद ४/२४/१०)

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में ही गाय की महत्ता इस रूप में भी प्रतिपादित की गई है–

"गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम्।।"

(ऋ. ६/२८/५)

यहाँ गाय को देवता, इन्द्र, सोम की पहली घूँट तथा इन्द्र का साक्षात् प्रतिनधि कह दिया गया है।

गाय का दूध आहार रूप में अमृततुल्य माना गया है। उसका घृत यज्ञ के साथ–साथ हमारे जीवन में भी तेज की वृद्धि करता है। वेदों में कहा भी गया है–*"आयुर्वै घृतं तेजो वै घृतं पयोऽमृतम्।"* गाय के मूत्र एवं गोबर का उपयोग अनेक दुःसाध्य रोगों को नष्ट करने वाली औषधियों में से है। इस प्रकार आयु, तेज तथा आरोग्य को प्रदान करने वाली विश्व का पालन करने वाली गौएँ सम्पूर्ण विश्व की माता कही गई हैं–

"गावो विश्वस्य मातरः"

किन्तु खेद का विषय है कि हमारे वर्तमान समाज में ऐसी मातृतुल्या गौवों के वध का समाचार श्रवण–गोचर हो रहा है।

गायों के अतिरिक्त अन्य पशुओं का महत्व भी हमारे लिए कम नहीं है। भैंस और बकरी भी दूध एवं घृत के माध्यम से मनुष्यों का उपकार करते रहे हैं। भेंड़ का दूध और उसका रोम भी कई प्रकार से काम में आता था। घोड़ों का महत्व अश्वमेध यज्ञ एवं रथ खींचने में था। इसके अतिरिक्त प्राचीन समाज में बैलों का भी भाँति–भाँति से उपयोग किया जाता था। बैलों के लिए 'ऋषभ', 'उस्र' तथा 'उसिया' शब्दों का व्यवहार होता था। हल जोतने तथा बोझा ढ़ोने वाली गाड़ी में इनका उपयोग होता था। आज भी बोझा ढोने वाली गाड़ियों को खींचने में बैलों का प्रयोग होता है तथा अत्यन्त उच्च तकनीक वाले खेत जोतने के साधनों के होते हुए भी खेतों की जुताई में बैलों का महत्व आज भी कम नहीं हैं।

पशुओं के अतिरिक्त अनेक पक्षियों के उपयोग की चर्चा भी वेदों में प्राप्त होती है। गौरैया, तीतर, ककर, कपिञ्जल, कपोत, सीचापू आदि पक्षियों के नाम वेदों में मिलते हैं। यजुर्वेद में पक्षियों का ऋतु–ज्ञान से गहन सम्बन्ध होने के कारण इन्हें ग्रहणीय बताया गया है–

"वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान् वर्षाभ्यस्तित्तिरीन्। शरदे वर्तिका हेमन्ताय ककरान् शिशिराय विककरान्।।" (यजुर्वेद २४/२०)

विशेष–विशेष पक्षियों के दर्शन एवं उनके कलरव से विशेष–विशेष ऋतुओं के आगमन का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरणार्थ काले तीतर की विशेष प्रकार की ध्वनि वर्षा के आगमन की सूचना देती है।

काल की गति के ज्ञान के लिए भी पक्षियों का कम महत्व नहीं है। जैसे दिन में कपोत तथा रात्रि में सीचापू नामक पक्षी सक्रिय रहता है अतः तत् तत् काल के ज्ञान में उनका उपयोग किया जा सकता है। दिन और रात्रि की सन्धि–काल में जतू नामक पक्षी के सक्रिय होने से दिन रात की सन्धि का उससे ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है–

"अह्ने पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः सन्धिभ्यो जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णान्।

(यजुर्वेद २४/२५)

इसी प्रकार विभिन्न दिशाओं में विभिन्न पशु–पक्षियों की सक्रियता के आधार पर दिशाओं का ज्ञान की इनसे प्राप्त किया जा सकता है।

वेद इस प्रकार के उल्लेखों से भरे हैं जिनमें पशु–पक्षियों के पालन एवं रक्षण के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। इन पशु एवं पक्षियों का उपयोग आज भी उतना ही है जितना एय समय में था। ईश्वर की रचनाओं में मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो अपने विचारशीलता एवं विवेकशीलता के गुण के आधार पर पशु–पक्षी तथा अन्य प्राकृतिक सम्पदाओं का लाभ उठा सकता है, इनका अनेक प्रकार से उपयोग कर सकता है अन्यथा पशुओं और पक्षियों के लिए तो इनकी उपयोगिता मात्र इतनी है कि अधिक बल वाला कम बल वाले को समाप्त कर अपनी क्षुधा–निवृत्ति करें।

–प्राचार्या, कानपुर विद्या मन्दिर महिला डिग्री कालेज
कानपुर

ऋषि दयानन्द, वैदिक परम्परा, अन्तःसाक्ष्य एवं डॉ. अम्बेडकर के तुलनात्मक संदर्भ में-

मनुस्मृति और उसकी समाज व्यवस्था का मौलिक स्वरूप

डॉ० सुरेन्द्र कुमार (मनुस्मृतिभाष्यकार)

नवजागरण के पुरोधा, क्रान्तिकारी समाजसुधारक और वैदिक वाङ्मय के यथार्थ व्याख्याता ऋषि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मूल्यांकन, यदि किसी एक ही शब्द से किया जाये, तो मेरे विचार से वह शब्द है– 'सत्य'। उन्होंने सत्य की खोज के लिए घर को त्यागा, सत्य को जाना, सत्य को माना, अपने उपदेशों में सत्य का प्रचार–प्रसार किया, अपने ग्रन्थों में सत्य का प्रकाश किया, वे सत्य के लिए जीये और सत्य के लिए शहीद हुए। अपने समय में महात्मा बुद्ध ने सामाजिक सुधार की क्रान्ति का सूत्रपात किया, किन्तु वे वैदिक वाङ्मय के विद्वान् नहीं थे। सन्त कबीर ने समाज सुधार के लिए जीवन भर संघर्ष किया, किन्तु उनको पढ़ने का अवसर ही नहीं दिया। ऋषि दयानन्द में विलक्षणता यह थी कि वे समाजसुधारक के साथ वैदिक वाङ्मय के पारंगत विद्वान् भी थे। जहां उन्होंने समाज में व्याप्त जाति–पाँति, ऊँच–नीच, छूत–अछूत, अज्ञान–अविद्या, अन्धविश्वास–पाखण्ड, अन्याय–अत्याचार आदि कुरीतियों को दूर किया, वहां वेदों–शास्त्रों के नाम पर फैलाई जाने वाली भ्रांतियों और उनकी आड़ में की जाने वाली विकृतियों को भी मिटाया। ऋषि दयानन्द के आविर्भाव के पश्चात् आज कोई भी व्यक्ति वेदों–शास्त्रों की आड़ में भ्रान्तियां–विकृतियां फैलाने का साहस नहीं कर सकता, क्योंकि उन्होंने अपने वाङ्मय में वेदों और शास्त्रों के सत्य स्वरूप को तर्क एवं प्रमाण पूर्वक उद्घाटित कर दिया है। इस शोधपत्र में, ऋषि दयानन्द द्वारा प्रस्तुत मनुस्मृति और उसमें वर्णित समाजव्यवस्था विषयक मन्तव्यों का अध्ययन किया जायेगा। वैदिक परम्परा एवं इतिहास से ऋषि के मन्तव्यों की पुष्टि के साथ–साथ मेरा यह भी प्रयास रहेगा कि मनु और मनुस्मृति के घोर विरोधी समझे जाने वाले डॉ० भीमराव अम्बेडकर के उन कथनों को भी प्रस्तुत करूं जिनसे ऋषि के मन्तव्यों का अधिकांशतः समर्थन होता है। इस शोधपत्र का यह नवीन एवं रोचक पक्ष होगा।

मनुस्मृति : सर्वोच्च प्रामाणिक शास्त्र

समस्त भारतीय साहित्य में मनु स्वायंभुव को एक प्रमुख धर्मशास्त्रकार माना गया है और उनको ही 'मनुस्मृति' अथवा 'मानवधर्मशास्त्र' नामक शास्त्र का प्रवक्ता या रचयिता माना गया है। अपने आरम्भिक काल से ही, मनुस्मृति को वेदों के बाद सर्वोच्च प्रामाणिकता एवं महत्व प्राप्त होता आ रहा है। तैत्तिरीय संहिता और ताण्ड्य महाब्राह्मण में लगभग समानरूप से प्राप्त इस वाक्य में तो मानों मनु की प्रशंसा में 'गागर में सागर' भर दिया गया है–

"मनुर्वै यत्किञ्च अवदत् तद् भैषजम्"

(तैत्ति. सं. २.२.१०.२, ३.१.६.४; ता० ब्रा० २३.१६.७)

अर्थात्– 'मनु ने जो कुछ कहा है वह मानवों के लिए औषध के समान कल्याणकारी है।'

ऋषि दयानन्द ने संहिता एवं ब्राह्मण ग्रन्थों के इस प्रशंसा वाक्य को काशी–शास्त्रार्थ में प्रमाणरूप में उद्धृत करते हुए, न केवल मनुस्मृति को सर्वोच्च महत्व दिया है अपितु स्मृतिग्रन्थों में उसको ही एकमात्र आर्ष, प्रामाणिक एवं पठनीय धर्मशास्त्र माना है। वे लिखते हैं–

(क) *"मनुस्मृत्यादीन्यपि वेदमूलानि सन्ति, तस्मात्तेषामपि प्रामाण्यमस्ति, न तु वेदविरुद्धानां वेदा–सिद्धानां चेति।"* (दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह, पृ० २१)

अर्थात्–'मनुस्मृति आदि भी वेदमूलक ग्रन्थ हैं, इस कारण वे भी प्रामाणिक हैं। वेदविरूद्ध और वेदों से असिद्ध ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं हैं।

(ख) ऋग्वेदादिभाष्य– भूमिका में "मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और उससे पृथक् स्मृति ग्रन्थ" अपठनीय घोषित किये हैं (ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य विषय)

ऋषि ने मनुस्मृति को कितना अधिक प्रामाणिक और महत्वपूर्ण माना है, इसकी जानकारी हमें इस बात से मिलती है कि वेदों के बाद मनुस्मृति को ही उन्होंने अपने ग्रन्थों का प्रामाणिक आधार बनाया है। उनके सिद्धान्त एवं शैली मनुस्मृति के अनुसार हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थों में मनु के ५१४ श्लोकों या श्लोकखण्डों को एकाधिक बार उद्धृत करते हुए कुल ७५० से अधिक बार प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया है। इतने अधिक प्रमाण अन्य किसी ग्रन्थ के नहीं हैं। इसके अतिरिक्त एक दर्जन से अधिक स्थलों पर मनु और मनुस्मृति का नामोल्लेख करके उन्हें धर्म, राजनीति, व्यवहार, शिक्षा, कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य,अनुष्ठान आदि विषय में प्रामाणिक मानने का निर्देश दिया है। इस प्रकार ऋषि का वाङ्मय एक शरीर है तो मनुस्मृति उसका प्राण है।

मेरा विश्वास है कि मनु और मनुस्मृतिविषयक यदि तीन प्रश्नों का समाधान कर लिया जाये तो मनुस्मृति और उसमें वर्णित समाजव्यवस्था का मौलिक स्वरूप स्वतः स्पष्ट हो जायेगा। वे हैं– १. मनुस्मृति का रचयिता और उसका काल, २. मनुस्मृति का प्रतिपाद्य विषय, ३. मनुस्मृति में प्रक्षेपों का अस्तित्व और उनका शोध। प्रथम, मैं इन्हीं प्रश्नों पर विचार प्रस्तुत करता हूँ।

१. मनुस्मृति का रचयिता और उसका काल

मनुस्मृति के रचयिता और उसके काल–निर्धारण सम्बन्धी प्रश्न का समाधान आज के लेखकों को सर्वाधिक चौंकाने वाला है। कारण यह है कि वे पाश्चात्य लेखकों द्वारा कपोलकल्पित कालनिर्धारण के रंग में इतने रंग चुके हैं कि उन्हें परम्परागत सत्य, असत्य प्रतीत होता है और कपोलकल्पित असत्य,सत्य प्रतीत होता है। आंकड़ों के अनुसार ऋषि दयानन्द द्वारा निर्धारित और पाश्चात्यों द्वारा निर्धारित मनुस्मृति के काल में दिन–रात या पूर्व–पश्चिम का मतान्तर है।

परम्परागत सम्पूर्ण वैदिक एवं लौकिक भारतीय साहित्य और ऋषि दयानन्द 'मनुस्मृति' या 'मानवधर्मशास्त्र' को मूलतः मनु स्वायम्भुव–रचित मानते हैं और मनु का काल वर्तमान मानवसृष्टि का आदिकाल मानते हैं। इस प्रकार मनु की रचना होने से मनुस्मृति का काल भी वेदों के बाद वर्तमान मानव सृष्टि का आदिकाल है। वे लिखते हैं–

"एतद्देशप्रसूतस्य" (मनु. २.२०) यह मनुस्मृति, जो सृष्टि की आदि में हुई है, उसका प्रमाण है" (सत्यार्थप्रकाश, समु. ११)

कुछ पाश्चात्य लेखक और उनकी शिक्षा–दीक्षा से अनुप्राणित उनके अनुयायी आधुनिक भारतीय लेखक मनुस्मृति का रचनाकाल १८५–१०० ई० पूर्व ब्राह्मण राजा पुष्यमित्र शुंग के जीवनकाल में मानते हैं। यह मत प्रो० बूलर द्वारा निर्धारित है और तत्कालीन पाश्चात्य लेखकों द्वारा मान्य है। इस मतान्तर पर अपना निर्णय देने से पूर्व मैं यहाँ पाश्चात्यों द्वारा स्थापित मान्यताओं एवं कालनिर्धारण के मूल में उनकी मानसिकता, लक्ष्य, लेखनपद्धति एवं उसकी अप्रामाणिकता पर कुछ चर्चा विस्तार से करना अत्यावश्यक समझता हूँ।

यह स्पष्ट है कि अंग्रेजों ने अपने राजनीतिक और धार्मिक निहित लक्ष्य की पूर्ति हेतु, हजारों वर्ष पुराने भारतीय इतिहास और साहित्य की घोर उपेक्षा करके केवल १५० वर्ष पूर्व, कपोलकल्पना द्वारा कुछ नयी मान्यताएं गढ़ीं और नये सिरे से एक काल्पनिक काल–निर्धारण प्रस्तुत किया। भारतीय इतिहास को अपने स्वार्थ के अनुरूप परिवर्तित, विकृत और अस्त–व्यस्त किया। भारतीय इतिहास, संस्कृति, सभ्यता, ऐतिहासिक व्यक्ति प्राचीन सिद्ध न हों, इस कारण उन्हें 'माइथोलॉजी' मिथक कहकर अप्रामाणिक बनाने का प्रयास किया। मैक्समूलर ने स्वयं स्वीकार किया है कि वैदिक साहित्य और वेद आदि का काल आनुमानिक है। आगे चलकर तो उन्होंने इनके कालनिर्धारण में

असमर्थता ही प्रकट कर दी थी। फिर भी आज हम उनके काल–निर्धारण को प्रमाणिक मान रहे हैं और परम्परागत भारतीय कालनिर्धारण को अप्रामाणिक कहते हैं, जबकि तटस्थ अंग्रेज और यूरोपियन लेखकों ने उनको प्रामाणिक नहीं माना है। वर्तमान में प्रचलित मनु और मनुस्मृति का कालनिर्धारण (१८५–१०० वर्ष ई.पू.) उपनिवेशवादी अंग्रेजों की ही कल्पित देन है।

वास्तविकता यह है कि ज्यों–ज्यों पुरातत्व–विज्ञान, भाषाविज्ञान, भूगोल ज्योतिष–संबंधी नवीन खोजें हुई हैं, त्यों–त्यों उन अंग्रेज लेखकों द्वारा स्थापित मान्यताएं एक–एक करके ढही हैं और भारतीय स्थापनाओं में बहुत की समग्र या अधिकांश में पुष्टि हुई है। अंग्रेजों और उनके अनुयायियों ने बाइबल तथा डार्विन के विकासवाद के आधार पर मनुष्य की उत्पत्ति दस हजार वर्ष पूर्व बताई थी और भारतीय साहित्य में वर्णित लाखों वर्ष पूर्व मानव के अस्तित्व विषयक संदर्भों को गप्प कहा था। आज के वैज्ञानिक दस हजार से हटकर दो लाख पूर्व तक की मान्यता पर पहुँच गये हैं। पचास से पैंतीस हजार वर्ष पूर्व की तो ममियां भी मिल गई हैं। एक अरब सत्तानवे करोड़ के भारतीय सृष्टिसंवत् को सुनकर उसे महागप्प कहकर मखौल उड़ाया था। मैडम क्यूरी की रेडियम की खोज ने उसकी पुष्टि कर दी। अमेरिका की उपग्रह–संस्था 'नासा' ने पिछले दिनों उपग्रह के द्वारा भारत–श्रीलंका के बीच समुद्र में डूबे पुल को खोजा और उसका काल उन्नीस लाख वर्ष पूर्व निर्धारित किया। एक गणना के अनुसार, यह रामायण के काल से मिलता है। महाभारत को काल्पनिक मानने वाले लोगों को पाश्चात्य ज्योतिषी बेली ने ग्रहयुति/ज्योतिषीय आधार पर बताया कि महाभारत युद्ध ३१०२ ईसा पूर्व हुआ था।

महाभारत में वर्णित 'द्वारका' नगरी को पुरातत्वविद् डॉ० एस.आर. राव ने खोज निकाला। अमेरिका के मैक्सिको में मिले 'मय–सभ्यता' के अद्भुत अवशेषों ने वैदिक काल के मय वंश को प्रामाणित कर दिया। 'इंडिया इन ग्रीस' में मिस्र के प्राचीन इतिहास के आधार पर बताया गया है कि वहां के निवासी हेमेटिक लोग 'मनु वोवस्वत्' (वैवस्वत) के वंशज हैं और उनके पिरामिडों में मिलने वाला सूर्यचिह्न उस आदि पुरूष का प्रतीक है। तुर्की और भारत में खुदाई में मिले वैदिक सभ्यता के सूचक विभिन्न पुरावशेषों का काल पन्द्रह हजार वर्ष ईस्वी पूर्व तक आंका गया है।

कहने का अभिप्राय यह है कि नवीन खोजों के सन्दर्भ में, कुछ अंग्रेजों द्वारा प्रस्तुत कालनिर्धारण अर्थहीन और मूल्यहीन हो चुका है। आज वे स्थापनाएं धराशायी हो चुकी हैं। ऐसे में उनको स्वीकार करने का औचित्य ही नहीं बनता। हां, यह कटु सत्य है कि कुछ लोग और वर्ग अपने नकारात्मक पूर्वाग्रहों, निहित स्वार्थों और निहित सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए उपनिवेशवादी अंग्रेजों द्वारा कल्पित मान्यताओं एवं काल–सीमाओं को बनाए रखना चाहते हैं।

काल निर्धारण संबंधी दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के उपरान्त अब रचयिता–विषयक प्रश्न पर विचार किया जाता है। उपलब्ध 'मनुस्मृति' या 'मानवधर्मशास्त्र' मूलतः मनु स्वायंभुव द्वारा प्रोक्त अथवा रचित है। समग्र प्राचीन साहित्य में इसी मनु की एक धर्मशास्त्रकार के रूप में ख्याति है, इन्हीं का रचयिता के रूप में उल्लेख है। वाल्मीकी–रामायण में मनुस्मृति के कई श्लोक मनु के नाम से उद्धृत हैं। उसमें सातवें मनु वैवस्वत का विवरण है। तैत्तिरीय संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ एवं यास्ककृत निरुक्त में मनु का और परवर्ती मनुओं का उल्लेख है। ब्राह्मण ग्रन्थों में कुछ श्लोक ऐसे हैं जिनके कुछ चरण यथावत् हैं और अन्य मनु में श्लोकों के छायावाद हैं। तैत्तिरीय संहिता (२.२.१०.२) और ताण्ड्य ब्राह्मण (२३.१६.७) में मनु के वचनों को औषध के समान हितकारी कहा है– ***"मनुर्वै यत्किञ्च अवदत् तद् भैषजम्।"*** आचार्य यास्क ने निरुक्त में मनु स्वायम्भुव के दायभाग संबंधी एक मत का उल्लेख करते हुए उनका काल विसर्ग अर्थात् वर्तमान मानवसृष्टि के आदिकाल में बतालाया है– ***"मिथुनानां विसर्गादौ***

मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्'' (३.४)। इससे यह भी संकेत मिलता है कि उस समय तक मनु का धर्मशास्त्र बन चुका था और लेखक प्रमाण के रूप में उस मत को स्वीकार करते थे। यही काल महाभारत, पुराण एवं लौकिक संस्कृत काव्यों में वर्णित है तथा महाभारत एवं पुराणों में मनु स्वायम्भुव के नाम से सैकड़ों श्लोकों को उद्धृत किया है जो वर्तमान मनुस्मृति में उपलब्ध हैं। वहां मनु का वंश एंव इतिहास भी वर्णित है।

पाश्चात्य और उनके अनुयायी लेखकों द्वारा आकड़ों के रूप में १८५–१०० ई. पूर्व निर्धारित मनुस्मृति की काल सीमा तो अग्रिम एक ही प्रमाण से मिथ्या सिद्ध हो जाती है। कालिदास से पूर्व के महाकवि भास–रचित 'प्रतिमा नाटक' में रावण के मुख द्वारा उच्चारित एक वाक्य है– *''अधीये मानवीयं धर्मशास्त्रम्''* (पृ. ७६) अर्थात्– ''मैं मनु का धर्मशास्त्र पढ़ रहा हूँ।'' भास के समय मानव धर्मशास्त्र था। भास का काल ५००–३०० ई.पू. माना जाता है। फिर मनु और मनुस्मृति को शुंग कालीन रचना कैसे कहा जा सकता है?

कुछ लोग यहां तक तर्क उपस्थित करते हैं कि मनुस्मृति का उक्त काल उसके नवीनतम संस्करण का है किन्तु यह तर्क भी सही चरितार्थ नहीं होता। पाश्चात्य लेखकों ने वैदिक ग्रन्थों की निर्धारित कालावधि में कई सदियों और सहस्राब्दियों का अन्तराल मूल और नवीनतम संस्करण में दिया है, जैसे– ब्राह्मण ग्रन्थ ४०००–११०० ई० पूर्व, रामायण ६००–२०० ई. पूर्व, निरुक्त ८००–७०० ई०पू०, महाभारत १४०० या ५.००–१५.० ई०पू०। यह अन्तराल मनुस्मृति को भी दिया जाना चाहिए था। इस प्रकार उसका काल ४०००–१०० ई०पू० कहा जाना चाहिए था। यदि ऐसा नहीं मानते हैं, तो पूर्व संकलित ग्रन्थों में मनु और उसके वंशजों का विवरण और उसके उद्धरण कैसे आ गये ? वे लेखक इस विसंगति का उत्तर नहीं दे पाते।

भारतीय इतिहास और वंशावलियों के आधार पर विचार करने से भी मनु आदि–कालीन व्यक्ति सिद्ध होते हैं। भारतीय इतिहास में ब्रह्मा को आदिपुरूष माना गया है। प्रारंभ में ब्रह्माओं की पीढ़ियां चलीं। ब्रह्मा का नाम स्वयम्भू भी है। मनु ब्रह्मा का पुत्र (कहीं–कहीं पौत्र) था, इस कारण यह मनु स्वायम्भुव कहलाया। शेष तेरह मनु, अन्य ऐतिहासिक व्यक्ति, राजा और ऋषि–मुनि उसके बाद के हैं। यदि हम पाश्चात्य ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करें,तो भी मनु स्वायम्भुव का काल हजारों वर्ष पूर्व जाता है। पाश्चात्य इतिहासकार पार्जिटर ने विशेष प्रयास करके भारतीय वंशावलियों को क्रमबद्ध करने की कोशिश की है। उनके अनुसार मनु वैवस्वत, जो सातवें मनु थे, का काल ३१०० ई० पू० है। मनु स्वायम्भुव उससे भी अनेक पीढ़ी पूर्व हुए हैं अतः मनु का काल हजारों वर्ष पूर्व स्थिर होता है। उस मनु द्वारा रचित होने से मनुस्मृति का भी काल उतना ही पूर्व मानना पड़ेगा।

अब मैं मनु और मनुस्मृति के काल पर एक नये दृष्टिकोण से विचार करता हूँ। वह है–'सामाजिक इतिहास'। सभी सामाजिक इतिहासकार और डॉ० अम्बेडकर भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि महाभारतकाल तक शिक्षा तथा समाजव्यवस्था का आधार वर्णव्यवस्था था। ऋषि दयानन्द भी कहते हैं कि इस समय वर्णव्यवस्था में विकृति आने लगी थी तथापि वह कर्म पर आधारित थी। महाभारत और गीता में वर्णों का कर्मों के आधार पर निर्धारण है और गुण–कर्म से ही उनकी घोषणा है–*''चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण–कर्म–विभागशः''* (गीता ४.१३)। इतिहासकारों और डॉ० अम्बेडकर ने इस विषय पर पर्याप्त विवेचन करते हुए स्वीकार किया है कि बुद्धकाल तक जातिवाद कठोर रूप धारण नहीं कर पाया था। उस समय भी सब वर्णों में सहभोज और व्यवहार था। सामाजिक इतिहास का यह तथ्य बतलाता है कि जन्मना जातिवाद महाभारत के बाद प्रारम्भ हुआ, फिर बुद्धकाल तक पनपा और शुंगकाल में कठोर हुआ। मनु और मनुस्मृति महाभारत काल से बहुत पूर्व के हैं, कालक्रम की दृष्टि से भी, और वंशावलियों की दृष्टि से भी। मनु के समय जातिवाद का अस्तित्व नहीं था और जातिवाद के उद्भव के समय मनु नहीं थे अतः उनकी 'स्मृति' में

जन्माधारित जातिवाद का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि जन्मना जातिवाद से सम्बन्धित जितने श्लोक मनुस्मृति में मिलते हैं वे मनु की रचना नहीं है। वे जातिवाद के समय किये प्रक्षेप हैं।

डॉ० अम्बेडकर का मत– यद्यपि डॉ० अम्बेडकर अधिकांशतः पाश्चात्य लेखकों का अनुसरण करते हैं किन्तु उन्होंने मनु के वंश और कालविषयक जो तथ्य स्वीकृत किये हैं उनसे अधिकांशतः परम्परागत मतों की ही पुष्टि होती है। डॉ० अम्बेडकर के कुछ महत्वपूर्ण उल्लेख मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ जिनसे निर्विवाद रूप से यह स्पष्ट होता है कि जो मनु प्राचीन इतिहास में और ऋषि दयानन्द के मत में आदिकालीन हैं, जो आदि पुरुष, आदि धर्मशास्त्रकार, आदि समाजव्यवस्थापक, आदिराजा या आदिसंविधान निर्माता हैं, जो प्राचीन इतिहास, संस्कृति–सभ्यता, साहित्य के प्राणभूत और आदरणीय हैं, डॉ० अम्बेडकर उनके विरोधी नहीं हैं, अपितु उन्हें आदरणीय मानते हैं। वे लिखते हैं– "प्राचीन भारतीय इतिहास में मनु आदरसूचक संज्ञा थी" (डॉ० अम्बेडकर वाङ्मय, भाग ब्राह्मणवाद की विजय पृ० १५१)

डॉ० अम्बेडकर उन मनु या मनुओं के काल को अत्यन्त प्राचीन मानते हैं। अपनी पुस्तक 'हू वर द शूद्राज' में उन्होंने उल्लेख किया है कि पैजवन का पुत्र राजा सुदास भरतवंशी था, और वह शूद्र था। भागवत–पुराण के दो श्लोकों को उद्धृत करके उन्होंने लिखा है कि सूरदास 'मनु स्वायंभुव' का वंशज था। वे लिखते हैं–"मनु के वंश में उत्पन्न हुए, जिनमें सुदास भी एक था.... उपर्युक्त बात से पता चलता है कि सुदास कैसे प्रतापी वंश में से था (अध्याय सात) इससे भी एक कदम आगे बढ़कर वे घोषणा करते हैं. ..'शूद्र आर्य जाति के सूर्य–वंश से थे। भारतीय आर्यों में शूद्र क्षत्रिय वर्ण के थे।"(अध्याय बारह)। "सुदास इक्ष्वाकु की ५० वीं पीढ़ी में था। सब मनु तथा इक्ष्वाकु के वंश में थे। सुदास शूद्र था, तो ये सभी राजा शूद्र थे।" (अध्याय ग्यारह)।

स्वयंभू अर्थात् ब्रह्मा का पुत्र होने के कारण प्रथम मनु का नाम 'स्वायंभुव' था। इसी के वंश में छह अन्य मनु हुए हैं। इनमें सातवां 'वैवस्वत मनु' था। इसी से मनुष्यों के 'सूर्य' और 'चन्द्र' दो वंश चले। डॉ० अम्बेडकर के अनुसार शूद्रों को सूर्यवंशी कहने का अभिप्राय है उनका मनु का वंशज होना। इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर के मतानुसार मनु अति प्राचीन–कालीन हैं, आदरणीय हैं और शूद्रों के भी आदिपुरूष हैं। फिर उनका विरोध डॉ० अम्बेडकर कैसे कर सकते हैं?

वस्तुतः पाश्चात्य लेखक भाषाविज्ञान के अधूरे चिन्तन और लंगड़े तर्कों के आधार पर आंकड़े निर्धारित करने में इतने उलझ गये कि वे संहिता और ब्राह्मणग्रन्थों में उद्धृत मनु के उल्लेखों और वंशविवरणों को भी भूल गये। यही कारण है कि उनके सारे कालनिर्धारण गड्ढमड्ढ हैं। फिर भी, दोनों दृष्टियों से मनु का काल 'एक समान' निर्धारित होता है। भारतीय परम्परा में वेद सबसे प्राचीन और आदिसृष्टिकालीन हैं। पाश्चात्य भी मानते हैं कि 'वेद विश्व के प्राचीन ग्रन्थ हैं।' मनु वेदों को परमप्रमाण मानकर सीधे उनसे ही अपने सिद्धान्तों को ग्रहण करने का उल्लेख करते हैं।' अन्य समस्त संहिता और ब्राह्मणग्रन्थ आदि वैदिक और लौकिक साहित्य में मनु के उल्लेख हैं। इस प्रकार मनु का काल वेदों के बाद और समस्त वैदिक साहित्य से पूर्व स्थिर होता है। आंकड़ों में आप चाहे उसे कुछ भी मानें। उस समय जन्मना जातिवाद नहीं था, अतः मनु और उनकी स्मृति को जन्मना जातिवाद से नहीं जोड़ा जा सकता।

२. मनुस्मृति का मूल प्रतिपाद्य विषय

मनुस्मृति की मौलिक समाज–व्यवस्था का निश्चय या निर्णय करने में यह बिन्दु सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। आज भी हम किसी रचना की समीक्षा करते समय उसके प्रतिपाद्य/वर्ण्यविषय/उद्देश्य का विवेचन करते हैं और रचनाकार के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं। आइये, इस आधार पर मनुस्मृति की छान–बीन करें।

मनुस्मृति का प्रतिपाद्य कर्मणा वर्ण–व्यवस्था है, जन्मना जातिव्यवस्था नहीं। यह मनुस्मृति

के अन्तःसाक्ष्यों एवं विषयवस्तु से भलीभाँति सिद्ध हो जाता है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में प्रश्नकर्ता ऋषियों द्वारा वर्णाश्रम–धर्मों की ही जिज्ञासा की गई है, वर्ण–धर्मों को बतलाने का ही मनु कथन करते हैं और वर्ण–धर्मों की समाप्ति पर उपसंहार भी 'वर्ण' शब्द से करते हैं। जिस ग्रन्थ के आदि–अन्त में स्वयं ही अतिस्पष्ट शब्दों में प्रतिपाद्य का कथन है, उसमें दूसरे विषय को मौलिक कैसे स्वीकार किया जा सकता है? आदि में ऋषि जन, मनु को धर्मों का विशेषज्ञ मानकर उनसे वर्णों के धर्मों को कथन करने की जिज्ञासा करते हैं– *"सर्ववर्णानां....धर्मान् नः वक्तुमर्हसि"* (१.२) अर्थात् सभी वर्णों के धर्मों को आप हमें बतलाने में समर्थ हैं। प्रथम अध्याय में वर्ण केवल चार ही बतलाये है (१.८८.९१)।

अर्थात् विषय को आगे आरंभ करते हुए मनु कहते हैं–*"वर्णधर्मान् निबोधत"* (२२५) अर्थात् वर्णों के धर्मों को सुनिए। वर्ण–धर्मों के कथन की समाप्ति पर भी विषय का उपसंहार वर्ण शब्द से करते हैं– *"एष धर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः"* (१०.१३१) अर्थात् चारों वर्ण के सम्पूर्ण धर्मविधान आपको बता दिये हैं। स्पष्ट है कि यदि इसमें संकेतित विषय से बाह्य अथवा विषयविरुद्ध कोई वर्णन है, तो वह मूल रचयिता का नहीं है; किसी अन्य द्वारा प्रक्षिप्त है।

इसी प्रकार मनुस्मृति की यह शैली है कि मनु ने किसी मुख्य विषय को प्रारम्भ या समाप्त करते समय आदि, अन्त अथवा दोनों स्थानों पर स्वयं विषय का संकेत किया है। विषयवस्तु के मध्य में वर्ण और आश्रमों का बार–बार उल्लेख है। सारी विषय वस्तु का ताना–बाना वर्णों के कर्त्तव्यों से बना हुआ है। कहीं भी जन्मना जातिवाद के किसी विषय को प्रारंभ या समाप्त करने का कथन नहीं है। जैसे– *"चतुर्णामपि वर्णानां स्त्रीविवाहान् निबोधत"* (३.२०)=चारों वर्णों की विवाह–विधि सुनिए। *"देहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि चतुर्णामपि वर्णानाम्"* (५.५७)=चारों वर्णों के लिए शरीर शुद्धि का प्रकार कहूंगा। *"चातुर्वर्ण्यं चत्वारश्चाश्रमाः"* (१२.९७)=चारों वर्ण और चार आश्रम। *"वर्णापेतम्... आर्यरुपमिवानार्यम्"* (१०.५७)= वर्णो में अदीक्षित जो अनार्य, आर्य बनकर रहते हैं, आदि। जो प्रवक्ता बार–बार वर्ण शब्द का प्रयोग करके अपने प्रतिपाद्य की घोषणा कर रहा हो, उसके ग्रन्थ में यदि उस घोषित वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध कोई श्लोक डाल दिया गया है तो स्वतः स्पष्ट है कि वह उसका नहीं हो सकता। वह अन्य द्वारा प्रक्षिप्त है, यह मानना ही पड़ेगा। क्योंकि जन्मना जातिवाद मनुस्मृति का प्रतिपाद्य है ही नहीं, अतः उससे सम्बन्धित मनुस्मृति में विद्यमान सभी श्लोक प्रक्षिप्त हैं।

३. मनुस्मृति में प्रक्षेप और सर्वप्रथम प्रक्षेपनिर्देशक

ऋषि दयानन्द से पूर्व, प्राचीन, मध्यकालीन एवं साम्प्रतयुगीन दर्जनों भाष्यकार हो चुके हैं। जिनमें प्राचीन भाष्य लुप्त हैं। मध्यकालीन भाष्यकारों में सबसे प्राचीन भाष्य मेधातिथि (९०० ईस्वी) का उपलब्ध है। उसके पश्चात् क्रमशः भारुचि (१०५० ईस्वी), गोविन्दराज (१०० ईस्वी), कुल्लूक भट्ट (१२०० ईस्वी), राघवानन्द (१३०० ईस्वी) और सर्वज्ञनारायण का (१४०० ईस्वी) के भाष्य उपलब्ध हैं। किसी भी भाष्यकार की बुद्धि इस तथ्य की ओर नहीं गई कि मनुस्मृति में समय–समय पर प्रक्षेप होते रहे हैं। यदि बुद्धि में यह तथ्य आया भी होगा तो उन्होनें स्वीकार नहीं किया, क्योंकि विचारधारा से वे सभी जन्मना जातिवादी थे। अपने उस समय में उन्हें जो पांडुलिपि प्राप्त हुई, उस पर ही उन्होनें भाष्य कर दिया। परस्पर विरोधी और प्रसंग–विरोधी श्लोकों के अर्थों की जुगत भिड़ाने में वे लम्बी–लम्बी कसरतें करते रहे किन्तु अन्ततः वे सफल नहीं हुए। ऋषि दयानन्द ने मनुस्मृति का गम्भीर मनन करते हुए यह अनुभव किया कि मनुस्मृति में परस्पर विरोधी, प्रसंग–विरोधी, शैली–विरोधी और मनु की प्रतिज्ञा के विरुद्ध "वेदविरोधी" श्लोक पाये जाते हैं, जिनसे मनुस्मृति का एकवाक्यता गुण नष्ट होता है। यह त्रुटि मनु सदृश अपने समय के तत्त्वद्रष्टा, धर्म तथा संविधान विशेषज्ञ महर्षि की रचना में संभावित नहीं है, अतः उन्होंने त्रुटियों का कारण 'प्रक्षेपों' को माना और घोषणा की कि मनुस्मृति में प्रक्षेप हैं और प्रक्षेपों से रहित मनुस्मृति को ही मैं

प्रामाणिक तथा पठन–पाठन में प्रमाण मानता हूँ। ऋषि लिखते हैं–

(क) "अब मनु जी का धर्मशास्त्र कौन–सी स्थिति में है, इसका विचार करना चाहिए। जैसे ग्वाले लोग दूध में पानी डालकर उस दूध को बढ़ाते हैं और मोल लेने वालों को फंसाते हैं, उसी प्रकार मानव धर्मशास्त्र की अवस्था हुई है। उसमें बहुत–से दुष्ट क्षेपक श्लोक हैं। वे वस्तुतः भगवान् मनु के नहीं हैं" (उपदेश मंजरी ८)

(ख) "मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और उससे पृथक् स्मृति ग्रन्थ" (अपठनीय हैं)। (ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य विषय)।

(ग) ऋषि दयानन्द ने मनृस्मृति के *"प्रोक्षितं भक्षयेन् मांसम्"* (५.२७), *"न मांसभक्षणे दोषः ..."* (५.५६), *"अविद्वान्, ब्राह्मणं दैवतंमहत्"* *"श्मशाने चापि तेजस्वी"* *"एवं... सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः"* (६.३१७–३१६) श्लोकों को प्रक्षिप्त के रूप में उद्धृत कर इनको स्वार्थी ब्राह्मणों द्वारा किये गये प्रक्षेप बताया है। (सत्यार्थप्रकाश समु० ११ और उपदेश मंजरी १२)।

आज हम देख रहे हैं कि ५३ वर्षीय भारतीय संविधान में ८० से अधिक संशोधन हो चुके हैं। वे संविधान–सभा द्वारा निर्मित संविधान के मूल अंश नहीं हैं। मनुष्य का एक स्वभाव है कि वह एक बार प्राप्त पद, सम्मान, स्वत्व और अधिकार की जी–जान की बाज़ी लगाकर भी सुरक्षा करना चाहता है। ज्यों–ज्यों कर्मणा वैदिक वर्णव्यवस्था विकृत होकर जन्मना जातिवादी के रूप में परिवर्तित एवं सुदृढ़ होने लगी त्यों–त्यों उच्च वर्ण के लोगों ने अपने स्वार्थ और हितों की रक्षा के लिए, तत्कालीन समाज के प्रमुख धर्मशास्त्र और संविधान में उसी प्रकार के प्रक्षेप कर दिये। कहीं ये प्रक्षेप निर्धारित कर्त्तव्यों से विहीन अपने जीवन का समर्थन करने के लिए किये गये हैं, कहीं अपने पतित आचरण को शास्त्रसम्मत सिद्ध करने के लिए, तो कहीं परिवर्तित परिस्थितियों के अभाव की पूर्ति के लिए किये गये हैं।

ऋषि की यह मान्यता कि 'मनुस्मृति में समय–समय पर प्रक्षेप हुए हैं', मनुस्मृति के परस्पर विरोधी, प्रसंगविरोधी अन्तःसाक्ष्यों से तो सिद्ध होती ही है, साथ ही अनेक पांडुलिपीय प्रमाणों से भी पुष्ट होती है–

१. सम्प्रति मनुस्मृति की जितनी पांडुलिपियां उपलब्ध हैं, उनमें अधिकांश श्लोकों की संख्या में अन्तर है और पादभेद तथा पाठभेद है। यह तथ्य यह सिद्ध करता है कि हस्तलिखित प्रतियों में लोग मनचाहे ढंग से पाठान्तर करते आये हैं। हस्तलिखित ग्रन्थ–परम्परा में यह काम आसानी से हो जाता था।

२. मेधातिथि (६०० ईस्वी) के भाष्य के साथ मनुस्मृति का एक पाठ–स्वरूप स्थिर हो चुका था, किन्तु उसके बावजूद कुल्लूक भट्ट (१२०० ईस्वी) के काल तक, तीन सौ वर्षों में १७० श्लोक मनुस्मृति में प्रक्षिप्त हो चुके थे। वे पूरी तरह घुल–मिल नहीं पाये, अतः कुल्लूक भाष्य के चौखम्बा संस्करण में वे यथास्थान बृहत् कोष्ठक में और पृथक् संख्याक्रम में दिये गये हैं।

३. डॉ० केवल मोटवानी ने अपनी पुस्तक "मनु धर्मशास्त्र–ए सोशोलोजिकल एण्ड हिस्टोरिकल स्टडी" में एक पुरातात्विक प्रमाण उद्धृत करके मनुस्मृति में हुए प्रक्षेपों के रहस्य को उजागर कर दिया है। जापान ने १९३२ ईस्वी में चीन पर आक्रमण करते समय एक स्थान से चीन की प्रसिद्ध दीवार को तोप के गोलों से तोड़ा तो उसमें एक संदूक निकला। उसमें चीनी ग्रन्थों की पांडुलिपियां भरी थीं। उन पांडुलिपियों को सर आगुत्स फ्रित्स जार्ज लंदन के पुस्तकालय में ले आया। उनको प्रो० एन्थनी ग्रेमे के नेतृत्व में चीनी भाषा के विद्वानों द्वारा पढ़वाया गया। एक ग्रन्थ में लिखा था कि भारत में मनु का एक धर्मशास्त्र है जो वैदिक संस्कृत में लिखा हुआ है और दस हजार वर्ष पुराना है। उसमें ६८० श्लोक हैं। आज २६८५ श्लोक हैं। मेरे शोधकार्य के अनुसार १४७१ प्रक्षिप्त और १२१४ मौलिक सिद्ध हुए हैं। अभी शोध की और आवश्यकता है।

४. मनुस्मृति और अन्य भारतीय साहित्य में प्रक्षेपों के होने की सच्चाई को ऋषि दयानन्द के अनुयायियों के अतिरिक्त अनेक पाश्चात्य

शेष पृष्ठ ४६ पर

ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों की
अप्रकाशित पाण्डुलिपियां और उनकी उपयोगिता

डॉ. धर्मवीर

अप्रकाशित हस्तलेखों में अधिकांश हस्तलेख लेखक द्वारा अपनी सुविधा के लिए बनाई गई सूचियां हैं। सामान्य पाठक के लिए इनका कोई विशेष उपयोग नहीं है परन्तु शोध की दृष्टि से ये सूचियां महत्वपूर्ण हैं। विशेष रूप से ऋषि दयानन्द द्वारा इनका निर्माण किया गया है इस कारण यह संग्रह अनुसन्धान क्षेत्र में अमूल्य सामग्री है। इस पर टिप्पणी करते हुए पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक ने लिखा है–, "हमारी तो यह मनोकामना है ऋषि के लिखे हुए या उनकी प्रेरणा से लिखे गये एक–एक अक्षर की रक्षा करना परम आवश्यक है। पता नहीं किस ग्रन्थ के किस कोने में कोई अपूर्व रत्न छिपा हो, जिसमें ऋषि की बुद्धि का विशेष चमत्कार हो अतः प्रत्येक ग्रन्थ नहीं एक–एक अक्षर का मुद्रण होना आवश्यक है, जिससे वह चिरस्थायी हो सके। ऋषि के ग्रन्थों का सम्पादन उच्च कोटि के विद्वानों द्वारा होना चाहिए" ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास पृष्ठ २८६ (द्वितीय संस्करण)।

यह कथन सत्य है। साथ ही ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में उन्हीं के द्वारा समय–समय पर संशोधन और परिवर्धन होते रहे हैं जिनका यथातथ्य ज्ञान न होने के कारण लोगों द्वारा विवाद भी उत्पन्न किया जा सकता है विशेष रूप से सन्ध्या अग्निहोत्र की पाण्डुलिपियों के सन्दर्भ में यह बात कही जा सकती है परन्तु इससे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।

सभा द्वारा वर्तमान में प्रकाशित किये जा रहे ग्रन्थों पर स्वामीजी का चित्र, उनका संक्षिप्त जीवन परिचय, काल क्रम और विषय वर्गीकरण कर ग्रन्थों की सूची तथा आर्य समाज के नियम सभी पुस्तकों पर प्रकाशित किये जाते हैं। जिससे इतिहास की सुरक्षा हो सके।

स्वामी जी द्वारा लिखे गये सभी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं इनमें विशेष रूप से प्रारम्भिक समय में रचित सन्ध्या की पुस्तक, अद्वैत–मतखण्डन, गर्दभतापिनी उपनिषद् मुख्य हैं। स्वामी जी के प्रकाशित ग्रन्थों की सूची तथा उनकी उपलब्ध पाण्डुलिपियों की सूची निम्न प्रकार है–

वैदिक साहित्य

१. वेद भाष्य का प्रथम नमूना (संवत् १६३१–अनुपलब्ध) पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं।
२. आर्याभिविनय (संवत् १६३२) पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं।
३. वेद भाष्य का दूसरा नमूना (संवत् १६३३)
४. चतुर्वेद विषय सूची (संवत् १६३३)
५. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (संवत् १६३३)
६. ऋग्वेदभाष्य (प्रथम मण्डल से सातवें मण्डल के ६१ वें सूक्त के दूसरे मंत्र तक) (संवत् १६३४ से संवत् १६४०)
७. यजुर्वेद भाष्य– संपूर्ण (संवत् १६३४ से संवत् १६३६)

कर्मकाण्ड

१. सन्ध्या (संवत् १६२०)
२. पञ्चमहायज्ञविधि (प्रथम संस्करण संवत् १६३१ संशोधित संस्करण संवत् १६३४) पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं।
३. संस्कार विधि (प्रथम संस्करण १६३२, द्वितीय संस्करण संवत् १६४०)

व्याकरण

१. अष्टाध्यायी भाष्य (भाग १ से ३, अध्याय, १ से ४ संवत् १६३३–१६३६) आठों अध्यायों का भाष्य किया था।
२. संस्कृत वाक्य प्रबोध (संवत् १६३६)
३. वेदाङ्ग प्रकाश (१ से १४ भाग) (संवत् १६३६ से १६४० तक)

सैद्धान्तिक

१. भागवत खण्डन (संवत् १६२३) पाण्डुलिपि नहीं
२. अद्वैत मत खण्डन (संवत् १६२७)
३. वेदान्तिध्वान्तनिवारण (संवत् १६३१) पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं
४. वेद विरुद्ध मत खण्डन (संवत् १६३१) पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं
५. शिक्षापत्री ध्वान्त निवारण (स्वामी नारायण मत खण्डन) (संवत् १६३१) पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं।

६. सत्यार्थ प्रकाश (प्रथम संस्करण १९३१, द्वितीय संस्करण संवत् १९३९)
७. भ्रान्ति निवारण (संवत् १९३४)
८. आर्योद्देश्यरत्नमाला (संवत् १९३४)
९. भ्रमोच्छेदन (संवत् १९३७)
१०. अनुभ्रमोच्छेदन (संवत् १९३७)
११. स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश (संवत् १९३९)
१२. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ (प्रकाशन काल संवत् २०५२)

विविध
१. गर्दभतापिनी उपनिषद् (संवत् १९३१)
२. पूना प्रवचन (व्याख्यानों का संग्रह) (संवत् १९३२)
३. व्यवहारभानु (संवत् १९३६)
४. आत्मकथा (संवत् १९३६)
५. गोकरुणानिधि (संवत् १९३७)
६. पत्र एवं विज्ञापन संकलन (चार भागों में सन् १९८० से १९८३ तक प्रकाशित)
७. ऋषि दयानन्द के पत्र

इससे पूर्व भी अप्रकाशित पाण्डुलिपियों की सूचना सभा के रिकार्ड में मिलती है जिसके विषय में पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने अपनी ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास नामक पुस्तक के चतुर्दश अध्याय में ऋषि के अमुद्रित ग्रन्थों की चर्चा करते हुए निम्न प्रकार लिखा–

वैदिक यन्त्रालय की सन् १९९१, ९२, ९३ की जो सम्मिलित रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी, उसके अन्त में वैदिक यन्त्रालय में विद्यमान पुस्तकों की एक सूची छपी है। उसके अन्तिम १२ वें पृष्ठ के दूसरे कालम में "श्रीमद्दयानन्द सरस्वती कृत सर्व सूची पुस्तक हस्तलिखित" शीर्षक के नीचे निम्न अमुद्रित पुस्तकों का उल्लेख मिलता है–

१. चतुर्वेद विषय सूची–१ २. ऋग्वेद मंत्र सूची १
३. यजुरथर्वमंत्र सूची–१ ४. अथर्वमंत्र सूची १
५. अकारादि क्रम से चार वेद और ब्राह्मणों की सूची ६
६. निरुक्तादि विषय सूची–३
७. ऐतरेय ब्राह्मण सूची १
८. शतपथ ब्राह्मण विषय सूची १
९. तैत्तिरीयोपनिषद् मिश्रित सूची१
१०. ऋग्वेद विषयस्मरणार्थ सूची १
११. निरुक्त शतपथमूल सूची १
१२. शतपथ ब्राह्मण सूची १
१३. धातुपाठ सूची १
१४. वार्तिक संकेत सूची १
१५. निघण्टु सूची १ १६. कुरान सूची १
१७. बाइबल सूची १८. जैन धर्म सूची

इस सूची के अतिरिक्त स्वामी जी के हस्तलिखित ग्रन्थों की एक और सूची छपी है। यह परोपकारिणी सभा के सं० १९४२ (सन् १८८५) के "आवेदन" नामक रिपोर्ट में पृष्ठ ७–१६ तक छपी है। उस सूची में उपर्युक्त पुस्तकों में से संख्या ३, १२ को छोड़ कर शेष सब पुस्तकों का उल्लेख है। देखें पुस्तक संख्या ११८ से १३४ तक। इनके अतिरिक्त उसमें कुछ अन्य पुस्तकों का भी उल्लेख मिलता है। यथा–

१९–४४ वार्तिकपाठ सभाष्य १, स्वामी जी के बड़े भाष्य से छंटवा कर लिखी।

२०–७३ मनुस्मृति के उपयोगी श्लाकों का संग्रह पुस्तक १ लिखी।

२१–७४ विदुरप्रजागर के उपयोगी श्लोकों का संग्रह पुस्तक १ लिखी।

२२–८१ ओषधियों का यादी पत्र स्वामी जी के लिखे हुए १।

२३–८३ कुरान हिन्दी भाषा में अनुवाद, स्वामी जी का बनाया हुआ, लिखी १।

२४–६४ प्राकृत भाषा का संस्कृत भाषा के साथ अनुवाद अस्त–व्यस्त, स्वामी जी का बनाया, लिखी पुस्तक १।

२५–६५ जैन फुटकर श्लोकों का संग्रह स्वामी जी कृत लिखी १।

२६–६६ रामसनेही मत गुटका लिखा।

ऋषि दयानंद द्वारा लिखे या लिखवाये हुए इन २६ अमुद्रित ग्रन्थों का उल्लेख परोपकारिणी सभा के पुराने रिकार्ड में मिलता है। इन २६ पुस्तकों में से कौन–कौन सी पुस्तक इस समय परोपकारिणी सभा संग्रह में सुरक्षित है, यह हम नहीं जानते। आचार्यवर श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु की नोट बुक में निम्न अमुद्रित हस्तलिखित पुस्तकों के नाम निर्दिष्ट हैं–

१. चतुर्वेद विषय सूची २. ऐतरेय ब्राह्मण सूची
३. शतपथ विषय सूची ४. ऋग्वेद विषय सूची
५. अथर्वकाण्ड १९, २० विषय सूची
६. ऐतरेयोपनिषद् विषय सूची
७. छान्दोग्योपनिषद् विषय सूची
८. इञ्जील की सूची ९. कुरान की सूची
१०. जैनमत श्लोक ११. ऋग्वेद सूक्त सूची
१२. शतपथ शिष्ट प्रतीक सूची
१३. निरुक्त शतपथ की मूल सूची
१४. कुरान मूल सूची
१५. वार्तिकपाठ आठों अध्यायों का
१६. महाभाष्य (पृष्ठ संख्या २८४–२८५)

वर्तमान में उपलब्ध एवं प्रकाशित पाण्डुलिपियों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

१ ऋग्वेद की सूक्त सूची, आदिमंत्र की प्रतीक सूची

यथा– सूक्त १– अग्निमीले संख्या

१ अग्नि पृ. सूक्त

यह प्रथम मण्डल से दशम मण्डल तक पूर्ण है। सूक्त का अभिप्राय देवता से है। इसमें पड़ी पृष्ठ संख्या स्वामीजी द्वारा प्रयुक्त वेद संहिता पुस्तक की प्रतीत होती है। इससे सूक्त के देवता निर्णय का बोध होता है।

२– ऋग्वेद विषय सूची

(क) इसमें ऋग्वेद के मण्डल सूक्त अध्याय के विषय का उल्लेख है। इसमें मात्र सात पृष्ठों पर लिखा गया है।

यथा–ऋग्वेद मण्डल–२, सूक्त ३५, मंत्र ४–६ युवावस्थायां विवाहविधानम्

सूची में अन्तिम संकेत ऋग्वेद मण्डल ७ सूक्त ५६ विषय– वास्तुकर्मप्रतिष्ठाविषयः।

इस उल्लेख के साथ यह सूची समाप्त होती है।

३. ऋग्वेद का संक्षेप से विषय सूची पत्र (ख)

यह छोटी नोट बुक है। इसमें कुल पन्द्रह पृष्ठ हैं दो ही पृष्ठों पर लिखा गया। इस लेख में ऋग्वेद और यजुर्वेद दोनों के विषयों का उल्लेख है। यथा–

पूर्वापर जन्म ऋ.म.–३, अध्याय–१, सूक्त–१, मंत्र २०–२१

एकान्तसेवनेन बुद्धिवृद्धिः, यजु० अध्याय २६ मंत्र १५

४. यजुर्वेद विषय सूची पत्र

इसी संचिका में पृष्ठ ४ पर यजुर्वेद विषय सूची है। इसमें यजुर्वेद के २३ वें अध्याय से ३५ वें अध्याय तक के विषयों का उल्लेख किया गया है।

यथा–यजु अध्याय–३५, मंत्र ६–१७ कल्याणेच्छा

५. यजुः अथर्व मंत्र सूची

१२ पत्रों पर यजुर्वेद और अथर्ववेद के मंत्रों को लिखा गया है परन्तु किस उद्देश्य से यह संग्रह किया गया है इस का कोई संकेत प्राप्त नहीं होता है।

६. अथर्ववेद विषय सूची

नीले रंग की कापी के आकार के आठ पृष्ठ हैं। इसमें प्रारम्भ में ऋग्वेद की सूची बनाने का विचार प्रतीत होता है। प्रारम्भ में ऋग्वेद के एक मंत्र का उल्लेख प्रथम पृष्ठ पर है। तीसरे पृष्ठ ऋग्वेद के दशम मण्डल के आठ मंत्रों को लिखकर काटा गया है। ६ पृष्ठ पर छः मंत्र प्रथम कालम के मध्यभाग में सामवेद के लिखे गये हैं। छठे पृष्ठ के प्रथम कालम के मध्य भाग में अथर्तवेद के ३ काण्ड से २० काण्ड तक विषयों का काण्डवार उल्लेख किया गया है जो तीन पृष्ठ ६–७–८ में पूर्ण हुआ है।

यथा– काण्ड–८, मंत्र–६, स्वयंवरः परीक्षापूर्वककर्त्तव्यः

७. अथर्ववेद के मंत्रों की सूची

दशम काण्ड व अट्ठारहवें काण्ड के कुछ मंत्रों का संग्रह है। इसके मुख पृष्ठ पर "स्वामी श्री दयानन्द सरस्वती कृत" ऐसा लेख अंकित है। संग्रह का प्रयोजन विदित नहीं होता।

८. अथर्वमन्त्र विषय सूची

यह अथर्ववेद के मंत्रों की विषय सूची है। यह ६ पन्ने की है। इसमें वर्ग एवं मत्रों की संख्या व आगे विषय हैं। इस सूची पर पृष्ठ संख्या ६ से १६ अंकित है।

६. चतुर्वेद सूची पत्र

क. ऋग्वेद सूची पत्र ख. यजुर्वेद सूची पत्र

ग. सामवेद सूची पत्र घ. अथर्ववेद सूची पत्र

इन चारों में मण्डलादि क्रम से सूक्तों एवं मंत्रों के प्रतीक एवं संख्या का उल्लेख का वर्णित विषयों के संकेत लिखे गये हैं।

ग. चारों वेदों की अकारादि क्रम से सूची

इसमें अकारादि क्रम से मंत्रों का उल्लेख कर विषयों का वर्णन किया गया है।

१०. तैत्तिरीय ब्राह्मण सूची पत्र

इसमें मंत्र प्रतीक धर के विषय का संकेत दिया गया है–

अनुवाक ८ सोमस्य त्विषिरसीत्यादि

राज्याभिषेकादि वि०

११. ऐतरेय ब्राह्मण

इसमें २३ पन्नों में अकारादि क्रम से ऐतरेय ब्राह्मण की सूची बनाई गई है। इसमें प्रारम्भ में प्रतीक धर के आगे विषय का उल्लेख किया गया है।

१२. ऐतरेय ब्राह्मण सूची पत्र

इसका प्रारम्भिक पृष्ठ अनुपलब्ध है। इसमें ऐतरेय ब्राह्मण के मंत्रों का अध्याय क्रम से उल्लेख है। यह अध्याय एक से पञ्जिका ८ के अध्याय ५ तक है। इस सूची के अन्तिम पृष्ठ पर "अथ शतपथ ब्राह्मण सूची पत्रम् लिख्यते" पंक्ति लिखकर शतपथ ब्राह्मण के प्रतीकों को अंकित किया गया है।

१३. कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय शाखा संहिता का सूची पत्र

इस सूची में मंत्र के प्रतीक और पता लिखकर उस मंत्र के प्रतिपाद्य विषय का संकेत है।

यथा–प्रपाठकः २ अनुवाक १

आप उन्दन्त्वित्यादि० ओषधादिविद्या।

अनेकविधपदार्थविद्या० ईश्वर प्रार्थनादि०प०वि०।

यह पहले काण्ड के अनुवाक ४६ तक है।

१४. शतपथ ब्राह्मण सूची पत्र

इस के मुख्य पृष्ठ पर "शतपथ ब्राह्मण सूचीपत्रमिदम्।।१।। अ से ह तक वर्ण अंकित हैं। श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत "यह लिखा गया है। ये केवल अट्ठारह पन्ने हैं इसमें अकारादि क्रम से कण्डिका का प्रतीक रख आगे उसके विषय का उल्लेख किया गया है।

१५. शतपथादि सूची पत्र

इसमें निरुक्त, ऐतरेय, शतपथ तथा चारों वेदों के विषयों की अकारादि क्रम से सूची बनाई गई है। इसको लिखने के विशेष उद्देश्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

१६. शतपथ ब्राह्मण

यह पृष्ठ २ से प्रारम्भ होकर १०८ तक है। यह प्रथम अध्याय के मध्य भाग से नवमध्याय के चौदहवें काण्ड तक है। शतपथ के सम्पादन के लिए उपयोगी है।

१७. शतपथ सूची पत्र

यह शतपथ के विषयों की है जो वर्णानुक्रम से लिखी गई है। यह सूची तकार से प्रारम्भ है सकार पर्यन्त है। इसमें २३ पन्ने हैं। सूची प्रारम्भ और अन्त दोनों ओर से अपूर्ण है।

१८. शतपथ शिष्ट प्रतीक सूची

यह १३ पन्नों की सूची है। शतपथ मंत्र संकेत देकर उसकी व्यवस्था–उपयोग–ऋक् यजु, साम, अथर्व में कहां पर है। इसका उल्लेख किया गया है। इसमें शतपथ में वेद के मूल मन्त्र कहाँ पर आये हैं उन प्रतीकों को अंकित किया गया है।

१६. मंत्रोपनिषद् सूची

इसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के मंत्र तथा केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक,माण्डूक्य ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य उपनिषद् लिखी गई है।

२०. निघण्टु सूची

इसमें निघण्टु के शब्दों की अकारादि क्रम अ से ह तक पूर्ण शब्द तथा उसके आगे उसका विषय लिखा गया है। यह सूची ४५ पन्नों में समाप्त हुई है।

२१. निरुक्त सूची पत्रम्

इसमें निरुक्त के प्रारम्भ से लेकर उत्तरार्ध के सप्तम अध्याय तक क्रम से किसी पाण्डुलिपि से सूची बनाई गई है। मूल की पत्र संख्या मध्य में अंकित की गई है अन्तिम पृष्ठ पर ऐतरेय ब्राह्मण का सूची पत्र प्रारम्भ किया है जो अपूर्ण है यह सूची २६ पृष्ठों में पूरी हुई है।

२२. निरुक्त सूची पत्रम्

इस सूची में निघण्टु और निरुक्त के पदों की सूची उनका अर्थ और उनसे सम्बद्ध ऐतरेय एवं शतपथ ब्राह्मण के सन्दर्भों का उल्लेख है। यह सूची अकारादि क्रम से बनाई गई है।

२३. उपनिषद सूची पत्र

यह तीन पन्नों का है। इसमें केन, कठ, ऐतरेय,तैत्तिरीय, प्रश्न, मुण्डक, छान्दोग्य, उपनिषदों के मंत्रों का संकेत कर उनके विषय का उल्लेख किया गया है।

२४. धातु संकेत सूची

इसमें अकारादि क्रम से उणादि धातुओं का विवरण के साथ उल्लेख है। यह अ से ह तक है। ३६ पन्नों में समाप्त है।

२५. उणादि संकेत सूची

इसमें अकारादि क्रम से उणादि शब्दों की सूची दी गई है।

२६. वार्तिक सूची

यह वार्तिक सूची अकारादि क्रम से अ से ह तक है इसमें वार्तिक संकेत तथा उदाहरण अंकित हैं। इसमें ५३ पन्ने है।

२७. वार्तिक पाठ

इसमें चार पृष्ठ हैं। अष्टाध्यायी के प्रथम द्वितीय अध्याय के वार्तिकों की संस्कृत में व्याख्या है। पृष्ठ के ऊपर वार्तिक पाठ अंकित है। पृष्ठ संख्या ११, १२, १३, १४ है।

२८. सर्वदर्शन संग्रह की विषय सूची

यह एक पन्ना है मोडकर दो बनाये गये है। प्रथम और चौथे पृष्ठ पर पंक्ति और विषय का निर्देश है।

यथा–	पृष्ठ	पंक्ति	सर्वदर्शन संग्रह
	२	१	चार्वाक् आरम्भः

२६. सन्ध्या की पुस्तक

यह पुस्तक बहुत प्रारम्भिक है और वर्तमान सन्ध या से भिन्न है। इसमें मंत्रों क़ा संग्रह करके उनका विनियोग दर्शाया गया है।

३०. अग्निहोत्र विधि

यह पुस्तक पूर्ण प्रतीत होती है। इसमें गार्हपत्य एवं आहवनीय होम का विधान है। यह प्रचलित परम्परा से बहुत भिन्न है। प्रारम्भिक संग्रह प्रतीत होता है। इसमें ११ पन्ने अर्थात् २२ पृष्ठ हैं। इसमें सात पन्ने गार्हपत्य के हैं। चार पन्ने आहवनीय के हैं।

३१. जैन फुटकर प्रश्नों का संग्रह

यह ५४ पन्नों का है। इसमें २१ पन्ना संख्या दो बार आई है। इसके ऊपर जैन फुटकर प्रश्नों का संग्रह स्वामी जी का किया–लिखा गया है।

३२. जैनियों की पुस्तकों का सूची पत्र

यह कुल तीन पन्नों का है। पहले पृष्ठ पर–जैनियों के पुस्तकों के सूची पत्र– ऐसा अंकित है। दूसरे पन्ने पर– प्रकरण रत्नाकर भाग–२ से प्रारम्भ है। तीसरे पन्ने पर भी प्रकरण रत्नाकर भाग दो के सन्दर्भों पर समीक्षा संक्षेप से लिखी गई है।

३३. जैन पुस्तकों की सूची

यह सूची ६ जैन ग्रन्थ रत्नसार भाग १, विवेकसार, रत्नावली,कल्पभाष्य, श्राद्ध दिनकृत्य आत्मनिन्दा भावना, तत्व विवेक में से समीक्षा की दृष्टि से सूची बनाई गई है। कौन विषय किस पुस्तक के किस पृष्ठ और किस पंक्ति पर अंकित है इसका उल्लेख किया गया है। यह १६ पन्नों की सूची है।

३४. बायबिल की विषय सूची

यह मुख पृष्ठ सहित अट्ठारह पन्नों की है। इसमें ८० बायबिल के सन्दर्भों की समीक्षा की गई है। "तौरेत" शीर्षक अंकित है।

३५. हिन्दी कुरान

हिन्दी अनुवाद पूर्ण कुरान अप्रकाशित पाण्डुलिपियों में कुरान का अनुवाद ऐसा है जिसे प्रकाशित किया जाना चाहिए स्वयं ऋषि दयानन्द ने यह अनुवाद कराया है। वे इसे प्रकाशित भी करना चाहते थे। ऋषि दयानन्द ने २४ अप्रैल सन् १८७६ के पत्र दानापुर के बाबू माधोलाल जी को लिखा था–"कुरान नागरी में पूरा तैयार है परन्तु अभी छापा नहीं गया।" महर्षि दयानंद सरस्वती द्वारा सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्दश समुल्लास में इसका उपयोग किया गया है। (पत्र और विज्ञापन भाग १ पृष्ठ २५६–२६०)

परोपकारिणी सभा अजमेर के पुस्तकालय में ऋषि दयानंद द्वारा कराया गया कुरान का आर्य भाषा में अनुवाद विद्यमान है। इसके अन्त में इसका लेखन काल "कार्तिक शुक्ला ६ संवत् १६३४" अर्थात् ३ नवम्बर १८७२ अंकित है। यह अनुवाद मुन्शी मनोहर लाल जी रईस गुरहट्टा पटना ने किया ऐसा स्वामीजी के पत्रों से प्रतीत होता है।

३६. हिन्दी कुरान अपूर्ण

यह अनुवाद १३२ पृष्ठों में है। अपूर्ण है।

३७. कुरान का सूची पत्र

यह कुरान विषय सूची पत्र ३१ पृष्ठों का है। इसमें १ से ६० तक की आयत और उसकी समीक्षा लिखी है।

इसके पहले पृष्ठ पर ऊपर "श्री हिरण्यगर्भाय नमः" मध्य में यह कुरान का विषय सूची पत्रहै– अन्त में स्थान जोधपुरराज्ये सन् १८८३ ई. अंकित है।

इसके अतिरिक्त एक दो नोट बुक हैं जिनमें व्यक्तियों के पते तथा हिसाब–किताब लिखा है। कुछ पृष्ठ भी हैं जिनमें परिचित राजाओं को उनके आय व्यय के सम्बन्ध में निर्देश लिखे गये हैं। इन लेखों में एक औषध संग्रह की संचिका भी है तथा खोज करने पर कुछ अन्य सामग्री भी मिल सकती है।

समय–समय पर सभा ने विद्वानों को इन हस्तलेखों का अवलोकन करने और व्यवस्थित करने का निवेदन किया तथा उन्होंने इसे व्यवस्थित भी किया। इनमें पं. ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, डॉ. रामनाथ वेदालंकार, पं. विरजानंद दैवकरणि प्रमुख हैं। जिन्होंने इन हस्तलेखों पर समय लगाकर इन्हें परिश्रम पूर्वक व्यवस्थित किया व सूचीबद्ध किया। वर्तमान में श्री मोहनचन्द जी आर्य ने सभा के सम्पूर्ण पुस्तकालय के साथ हस्तलेखों को भी फिर से व्यवस्थित करने का कार्य सम्पन्न किया है।

इन अप्रकाशित हस्तलेखों के अवलोकन से यह विदित करने में सरलता होती है। स्वामीजी महाराज ने जो कुछ भी लिखा है वह ऐसे ही नहीं लिख दिया, उसके पीछे उनका बहुत अधिक परिश्रम है जिसकी कल्पना इन हस्तलेखों की जानकारी के बिना संभव नहीं है। जो कुछ भी ऋषि दयानंद ने अपने ग्रन्थों में लिखा है उसको उन्होंने प्रामाणिक बनाने का भी पूर्ण प्रयास किया है। यह भी इन सूचियों से स्पष्ट होता है।

इन सभी हस्तलेखों का गहराई से अध्ययन करने की आवश्यकता है जिससे अनेक अज्ञात विषयों पर प्रकाश पड़ सकता है। साथ ही इनको प्रकाशित कर इनकी सुरक्षा करना भी आवश्यक है। यह एक अमूल्य धरोहर है।

–अजमेर (राज.)

ऋषि दयानंद का दलितोद्धार के संदर्भ में योगदान

डॉ० कुशलदेव शास्त्री

दलितोद्धार से संबद्ध कतिपय परिभाषिक शब्द–

दलितोद्धार के प्रसंग में चर्चित होने वाले कतिपय पारिभाषिक शब्द हैं– वर्णव्यवस्था, शुद्धि, दलित, हरिजन, अस्पृश्योद्धार अछूतोद्धार आदि। इन सबका आशय स्पष्ट करने के लिए सर्वप्रथम संक्षेप में इनका विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है–

वर्ण व्यवस्था–

भिन्न–भिन्न क्षमताओं वाले व्यक्तियों को प्राचीन काल से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार संज्ञाओं से संबोधित किया गया था। ब्राह्मणवर्ग से बौद्धिक नेतृत्व की अपेक्षा की गई थी। क्षत्रियों से सुरक्षा की कामना की गई थी। वैश्यों से व्यापार के माध्यम से समृद्धि की आशा की गई थी, तथा शूद्रों से शारीरिक श्रम द्वारा सेवा की अपेक्षा की गई थी। इसी का नाम वर्ण व्यवस्था था।

दलितोद्धार या जातिनिर्मूलन के प्रसंग में प्रायः यह प्रश्न उपस्थित होता रहा है कि वर्णव्यवस्था जन्मना है या कर्मणा। यदि उसे जन्मना माना जाय तो वह जातिगत भेदभाव को निर्माण करने का एक महत्वपूर्ण कारण सिद्ध होती है। ऋषि दयानन्द कर्मणा वर्णव्यवस्था के पक्षधर हैं। उनकी यह धारणा थी कि जन्मना वर्णव्यवस्था तो पांच–सात पीढ़ियों से शुरू हुई है, अतः उसे पुरातन या सनातन नहीं कहा जा सकता। अपने तार्किक प्रमाणों द्वारा उन्होंने जन्मना वर्ण व्यवस्था का सशक्त खंडन किया है। उनकी दृष्टि में जन्म से सब मनुष्य समान हैं। जो जैसे कर्तव्य–कर्म करता है, वह वैसे वर्ण का अधिकारी होता है। कारण चाहे कुछ भी हो या न हो जन्मना वर्ण व्यवस्था मानने वाले ऋषि दयानन्द के मत से असहमत हैं।

शुद्धि–

किसी मत विशेष से स्वमत में प्रवेश प्रक्रिया के संदर्भ में शुद्धि शब्द का प्रयोग कब और कैसे शुरू हुआ, इसकी विश्वसनीय जानकारी प्राप्त नहीं होती। श्री इंद्र विद्यावाचस्पति का अनुमान है कि कभी वैदिक धर्म में प्रवेश के लिए किसी समाचार में संवाददाता ने शुद्धि शब्द का प्रयोग किया होगा और वह चल गया होगा। शुद्धि शब्द का विश्लेषण करते हुए वे यह स्पष्ट करते हैं कि यह मानना कि हिंदू कहलाने वाला व्यक्ति चाहे कितना भी पतित हो वह शुद्ध और अन्य मतावलंबी चाहे कितना भी सज्जन हो, अशुद्ध है, ऋषि दयानन्द की धारणा के विपरीत है। दयानन्द तो विचारों के साथ सदाचार और खान–पान की शुद्धि पर भी बल देते थे। विदेश यात्रा या विदेशियों के साथ ज्ञानार्जन को उन्होंने कभी अशुद्ध नहीं माना। दुष्ट भोजन और कुत्सित आचार ही उनके लिए अशुद्धि या पाप थे। यह बात सही है कि अछूत कहलाने वाले हिन्दुओं की तरह वैदिक धर्म में प्रविष्ट होने वाले मुस्लिम–ईसाई आदि अहिन्दुओं के लिए भी प्रारम्भ में शुद्धि शब्द का प्रयोग होता था। कालांतर में दलितों को अन्य मतावलंबियों से पृथक् करने के लिए, दलितोद्धार शब्द का प्रयोग होने लगा। शुद्धि शब्द अन्य मतावलंबियों तक ही सीमित रह गया।

अस्पृश्य–अछूत–दलित–

'दलितोद्धार' से पूर्व दलितों के लिए सार्वजनिक–सामाजिक क्षेत्र में अस्पृश्य और अछूत शब्द प्रचलित थे, लेकिन जब समाज

सुधार के बाद समाज में यह धारणा बनने लगी कि कोई भी अस्पृश्य और अछूत नहीं है, तो धीरे–धीरे अस्पृश्य–अछूत के स्थान पर दलित शब्द रूढ़ हो गया। स्वाभाविक रूप से अस्पृश्योद्धार अछूतोद्धार का स्थान भी दलितोद्धार ने ले लिया। मानसिक परिवर्तन ने पारिभाषिक संज्ञाओं को भी परिवर्तित कर दिया।

प्रदीर्घ समय तक सामाजिक–आर्थिक आदि दृष्टि से जिनका दलन किया गया, कालांतर में उन्हें ही दलित कहा गया। पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति के अनुसार जब यह महसूस किया जाने लगा कि शुद्धि और दलितोद्धार दोनों चीजें एक–सी नहीं हैं। दलितों की हीन दशा के लिए सवर्ण समझे जाने वाले लोग ही जिम्मेदार हैं, जिन्होंने जाति के करोड़ों व्यक्तियों को अछूत बना रखा है। उन्हें मानवता का अधिकार देना सवर्णों का कर्त्तव्य है। इस विचार को सामने रखकर आर्य समाज के कार्यकर्त्ताओं ने अछूतों के लिए दलित और अछूतों के उद्धार कार्य के लिए दलितोद्धार की संज्ञा दे दी। तभी से अछूतों की शुद्धि के संदर्भ में 'दलितोद्धार' संज्ञा प्रचलित हो गयी। यह बात अविस्मरणीय है कि आर्यसमाज के समाज–सुधार आंदोलन ने ही दलित–आंदोलन को दलित और दलितोद्धार जैसे सक्षम शब्द प्रदान किये हैं। सन् १९१७ से १९२४ के मध्य स्वामी श्रद्धानंद जी दिल्ली को केन्द्र बनाकर दलितोद्धार के कार्य में सर्वात्मना समर्पित थे। वे ही दलितोद्धार सभा के संस्थापक थे। उसी काल में दलित–दलितोद्धार जैसे अभिनव शब्द समाज–सुधार आन्दोलन को आर्यसमाज ने प्रदान किये। कालांतर में डा० अम्बेडकर और उनके आंदोलन ने इन संज्ञाओं को स्वीकार कर इन्हें और भी अधिक रूढ़ बनाया।

हरिजन–

अस्पृश्योद्धार आंदोलन को हरिजन आंदोलन नाम देने का श्रेय महात्मा गांधी को है। 'हरिजन' पत्र के माध्यम से भी उन्होंने इस आंदोलन को गति दी। महात्मा गांधी जी ने यह सोचकर कि जिनका कोई नहीं,उनका हरि है इन्हें हरिजन नाम दे दिया। निश्चित ही यह नाम देते समय महात्मा जी के अंतःकरण में अस्पृश्यों के प्रति सद्भावना होगी, पर डॉ० अम्बेडकर जी को मिस्टर गांधी द्वारा दिया गया यह नाम पसंद नहीं आया। वस्तुतः नास्तिक बौद्ध धर्म की ओर झुकाव होने के कारण उन्हें हरि जैसी अनादि सत्ता में विश्वास भी नहीं था। फिर अस्पृश्यों को हरिजन नाम देने वाले महात्मा गांधी महर्षि दयानंद की तरह कर्मणा वर्ण व्यवस्था के पक्षधर न होकर जन्मना वर्ण–व्यवस्था के हिमायती थे। डा० अंबेडकर जी के लिए राजनैतिक नेताओं की तुलना में आर्य समाजी नेता अधिक विश्वसनीय थे। ऐसे ही कुछ कारण रहे होंगे जिससे उन्होंने हरिजन शब्द की उपेक्षा की और दलित शब्द को स्वीकार किया होगा। आज महाराष्ट्र में डॉ० अंबेडकर का दलित अनुयायी 'हरिजन' संज्ञा को अपने लिए प्रयुक्त अपशब्द सा ही समझता है। पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति के अनुसार केवल जन्म के आधार पर अनेक जातियों को एक अलग वर्ग मानकर इन्हें हरिजन का नाम दे देना सर्वथा अनुचित है। वह मनुष्य मात्र की समानता की दृष्टि से तो अनुचित है ही, व्यावहारिक दृष्टि से भी अत्यंत हानिकारक है।

ऋषि दयानन्द की वर्ण–व्यवस्था या दलितोद्धार विषयक शास्त्रीय भूमिका–

आधुनिक नवजागरण काल में ऋषि दयानंद प्रथम महापुरूष थे, जिन्होंने शास्त्रीय आधार पर एक बार फिर से वर्ण व्यवस्था को गुण कर्म पर आधारित होना घोषित किया। स्वरचित ग्रन्थों द्वारा उन्होंने यह सिद्ध किया कि इस सामाजिक विधान का आधार गुण–कर्म स्वभाव ही है न कि जन्म। वर्ण परिवर्तन के सिद्धांत को भी उन्होंने शास्त्रीय धरातल पर स्वीकार किया है।

ऋषि दयानन्द सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के परिशिष्ट स्वमंतव्यामंतव्यप्रकाश में स्पष्ट रूप से यह घोषित किया है कि "मैं 'वर्णाश्रम' गुण

कर्मों की योग्यताओं से मानता हूँ।'' 'आर्योद्देश्यरत्नमाला'' में वर्ण शब्द की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं, 'जो गुण और कर्मों के योग से ग्रहण किया जाता है, वह वर्ण शब्दार्थ से लिया जाता है।' 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के वर्णाश्रम प्रकरण में अपनी भूमिका को और अधिक स्पष्ट करते हुए महर्षि लिखते हैं,'प्रथम मनुष्य जाति सबकी एक है।... मनुष्य जाति के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये वर्ण कहाते हैं... ये चार भेद गुण कर्मों से किये गये हैं। इनका नाम वर्ण इसलिये है कि जैसे जिसके गुण कर्म हों, वैसा ही उसको अधिकार देना चाहिए।'' सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में महर्षि दयानंद अपनी वर्णव्यवस्था विषयक धारणा को निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं, –'जिस–जिस पुरूष में जिस–जिस वर्ण के गुण–कर्म हों, उसे उस–उस वर्ण का अधिकार देना। ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं क्योंकि उत्तम वर्णों को भय होगा कि जो हमारे संतान मूर्खत्वादि दोषयुक्त होंगे तो शूद्र हो जायेंगे और संतान भी डरते रहेंगे कि जो हम उक्त चाल–चलन और विद्या युक्त न होंगे, तो शूद्र होना पड़ेगा और नीच (=निम्न) वर्णों को उत्तम वर्णस्थ होने के लिये उत्साह बढ़ेगा। आगे इन चारों वर्णों की यथायोग्य अधिकार देने का काम राजा और सभ्यजनों को सौंपते हुए लिखते हैं– 'विद्या और धर्म के प्रचार का अधिकार ब्राह्मण को देना, क्योंकि वे पूर्ण विद्यावान् और धार्मिक होने से उस काम को यथायोग्य कर सकते हैं। क्षत्रियों को राज्य के अधिकार देने से कभी राज्य की हानि का विघ्न नहीं होता। पशु पालनादि का अधिकार वैश्यों ही को होना योग्य है, क्योंकि वे इस काम को अच्छी प्रकार कर सकते हैं। शूद्र को सेवा का अधिकार इसलिए है कि वह विद्या रहित (मूर्ख) होने से विज्ञान संबंधी काम कुछ भी नहीं कर सकता, किंतु शरीर के सब काम कर सकता है। इस प्रकार वर्णों को अपने–अपने अधिकार में प्रवृत्त करना राजा आदि सभ्यजनों का काम है।' महर्षि ने 'संस्कार विधि' के गृहाश्रम प्रकरण में 'मनुस्मृति' तथा 'गीता' के आधार पर ब्राह्मण आदि वर्णों के लक्षण उद्धृत करने के उपरांत लिखा है, 'ये गुण कर्म जिन व्यक्तियों में हों, वे ब्राह्मण और ब्राह्मणी होवें। विवाह भी इन्हीं वर्ण के गुण कर्म स्वभावों को मिला ही के करें। मनुष्य मात्र में से इन्हीं (गुण–कर्म वाले को) ब्राह्मण वर्ण का अधिकार होवे।'' इसी प्रकार की बात क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए कहने के बाद महर्षि लिखते हैं, ''इन गुण कर्मों के योग से ही चारों वर्ण होवें, तो उस कुल, देश और समुदाय की बड़ी उन्नति होवे और जिनका जन्म जिस वर्ण में हो, उसी के सदृश गुण–कर्म–स्वभाव हों तो अतिविशेष है।''

ऋषि दयानंद ने छांदोग्य उपनिषद्, महाभारत तथा अपनी तर्क शक्ति के आधार पर कर्मणा वर्ण व्यवस्था की शास्त्रीय भूमिका को 'सत्यार्थ प्रकाश' में प्रश्नोत्तर शैली में निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है–

प्रश्न : क्या जिसके माता ब्राह्मणी, पिता ब्राह्मण हों, वह ब्राह्मण होता है? और जिसके माता–पिता अन्य वर्णस्थ हों, उनका संतान कभी ब्राह्मण हो सकता है ?

उत्तर : हाँ बहुत से हो गये होते हैं, और होंगे भी। जैसे छांदोग्य उपनिषद् में जाबाल ऋषि अज्ञातकुल, महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण, और मातंग ऋषि चांडाल कुल से ब्राह्मण हो गये थे। अब भी जो उत्तम विद्या स्वभाव वाला है, वही ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है और वैसा ही आगे भी होगा।

प्रश्न : हमारी उलटी और तुम्हारी सूधी समझ है, इसमें क्या प्रमाण है?

उत्तर : यही प्रमाण है कि जो तुम पाँच–सात पीढ़ियों के वर्त्तमान को सनातन व्यवहार मानते हो और हम वेद तथा सृष्टि के आरम्भ से अद्य पर्यंत की परंपरा मानते हैं। देखो, जिसका पिता श्रेष्ठ उसका पुत्र दुष्ट और जिसका पुत्र श्रेष्ठ

उसका पिता दुष्ट तथा कहीं दोनों श्रेष्ठ व दुष्ट देखने में आते हैं। इसलिए तुम लोग भ्रम में पड़े हो।

जो कोई रज–वीर्य के योग से (जन्मना) वर्ण–व्यवस्था मानें और गुण कर्मों के योग से न मानें तो उससे पूछना चाहिए कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ अन्त्यज अथवा क्रिश्चन–मुसलमान हो गया हो, उसको भी ब्राह्मण क्यों नही मानते? यहाँ यही कहोगे कि उसने ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिये, इसलिए वह ब्राह्मण नहीं है, इससे यह सिद्ध होता है कि जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण–कर्म–स्वभाव वाला होवे, तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिए।"

प्रश्न : जो किसी के एक ही पुत्र व पुत्री हो वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट हो जाये तो उसके माँ–बाप की सेवा कौन करेगा, और वंशोच्छेदन भी हो जायेगा। इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिये?

उत्तर : न किसी की सेवा का भंग और न वंशोच्छेदन होगा, क्योंकि उनको उनकी अपने लड़के–लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे संतान विद्यासभा और राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे, इसलिए कुछ अव्यवस्था न होगी। यह गुण, कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें वर्ष और पुरूषों की पचीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिए, और इसी क्रम में अर्थात् ब्राह्मण वर्ण की ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्ण की क्षत्रिया, वैश्य वर्ण की वैश्या और शूद्र वर्ण की शूद्रा के साथ विवाह होना चाहिये, तभी अपने–अपने वर्णों के कर्म और परस्पर प्रीति भी यथायोग्य रहेगी।"

शास्त्र और तर्क दोनों ही आधारों पर ऋषि दयानंद वर्णव्यवस्था को जन्मना नहीं, अपितु कर्मणा सिद्ध करते हैं। उनकी दृढ़ धारणा के अनुसार कर्मणा वर्णव्यवस्था के लड़खड़ा जाने से और जन्मना वर्ण व्यवस्था प्रचलित हो जाने से जातिगत भेदभाव में वृद्धि हुई है। उनकी दृष्टि में जातीयता के निर्मूलन के लिए जन्मना वर्ण व्यवस्था का विरोध और कर्मणा वर्ण व्यवस्था की स्थापना करना बहुत ही जरूरी है।

ऋषि दयानंद की दलितों के उन्नयन में व्यावहारिक भूमिका–

ऋषि दयानंद का व्यक्तित्व मनसा–वाचा–कर्मणा एक जैसा था। वे अपने सिद्धांतों का केवल वाणी और लेखनी द्वारा ही प्रचार नहीं करते थे, अपितु उन्हें वे अपने क्रियात्मक जीवन में सार्थकता प्रदान करते थे। वर्ण व्यवस्था और दलितोद्धार के संदर्भ में उनके जीवन से एकाधिक उदाहरण प्रस्तुत हैं–

खान–पान या अपृश्यास्पृश्यता की दृष्टि से देखें तो ऋषि दयानंद का प्रगतिशील व्यक्तित्व हमें पदे–पदे नजर आता है। सन् १८६७ में गढ़मुक्तेश्वर में वे मांझी की आधी रोटी खाते हैं।" सन् १८६८ में फर्रूखाबाद में श्री सुखवासीलाल साध द्वारा लाये कढ़ी–भात का भोजन स्वीकार करते हैं। सन् १८७२ में अनूप शहर में उपस्थित जनसमुदाय के बीच नाई का भोजन ग्रहण करते हैं। सन् १८७४ में अलीगढ़ जनपद के जाट श्री गुरूराम प्रसाद के वेदभाष्यानुवाद को संशोधित करने के लिए वे अपना अमूल्य समय देने के लिए तत्पर रहते हैं।" सन् १८७४ में ही बिना जूते पहने कच्चा भोजन लाने वाले भक्त ठाकुर प्रसाद से वे यह स्पष्ट रूप से कह देते हैं कि मैं छुआछूत को नहीं मानता आप भी इस बखेड़े में मत पड़िए। इसी वर्ष गुजरात के कातार गांव में किसानों द्वारा आग में भूनकर दी गई ज्वार (पोंक–हुर्डा) को वे सहर्ष ग्रहण करते हैं। पुणे में सर्वश्री गोविंदमांग, गोपाल चमार, रघु महार आदि का लिखित प्रार्थना–पत्र पाकर शूद्रातिशूद्रों के विद्यालय में १६ जुलाई १८७५ को वेदोपदेश देते हैं। सन् १८७८ में मुस्लिम डाकिये द्वारा एक अस्पृश्य (कसाई मजहबी सिख) श्रोता को दुत्कारे जाने पर भी उसे रूड़की में आत्मीयता पूर्वक

नियमित रूप से अपने वेद–प्रवचन में आने का निमंत्रण देते हैं। सन् १८७६ में जन्म के मुसलमान मुहम्मद उमर को अलखधारी नाम प्रदान कर अपनत्व प्रदान करते हैं। अपने ही नहीं सबके मोक्ष की चिंता करने वाले थे ऋषि दयानन्द। किसी जाति–संप्रदाय–वर्ग विशेष के लिए नहीं, अपितु सारे संसार के उपकार के लिए उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की थी।

सन् १८८० में काशी में एक दिन एक मनुष्य ने वर्णव्यवस्था को जन्मगत सिद्ध करने के उद्देश्य से महाभाष्य का निम्न श्लोक प्रस्तुत किया–

विद्या तपश्च योनिश्च एतद् ब्राह्मण्यकारकम्।
विद्यातपोभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः।।४।१।४८।।

अर्थात् ब्राह्मणत्व के तीन कारक हैं १. विद्या, २. तप और ३. योनि। जो विद्या और तप से हीन है वह जात्या (जन्मना) ब्राह्मण तो है ही।

ऋषि दयानंद ने प्रतिखंडन में मनु का यह श्लोक प्रस्तुत किया–

यथा काष्ठमयो हस्ती, यथा चर्ममयोमृगः।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति।। २.१५७।।

अर्थात्– जैसे काठ का कठपुतला हाथी और चमडे का बनाया मृग होता है, वैसे ही बिना पढ़ा हुआ ब्राह्मण होता है। उक्त हाथी, मृग और विप्र ये तीनों नाम मात्र धारण करते हैं। संस्कार विधि में भी ऋषि दयानंद ने अपनी इस धारणा को अभिव्यक्त किया है।

सन् १८८० में ही काशी में एक दिन एक और व्यक्ति ने महर्षि से जाति भेद के विषय पर विचार किया। प्रत्युत्तर में ऋषि ने कहा कि ब्राह्मणादि वर्ण जन्मजात नहीं हो सकते यदि ऐसा हो तो एक ब्राह्मण के दो पुत्रों में से एक ईसाई और एक मुसलमान हो जाये तो क्या फिर वे ब्राह्मण ही माने जायेंगे, यदि नहीं माने जायेंगे तो फिर जन्म से ब्राह्मणत्व कहाँ रहा? महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में भी इस बात का प्रतिपादन किया है। सन् १८८० में ही मेरठ में लगभग एक मास तक ऋषि दयानंद की अंतेवासिनी बनकर शिक्षा ग्रहण करने वाली महाराष्ट्रीय विदुषी पंडिता रमाबाई ने १३ नवंबर १६०३ को लिखे पत्र में यह स्वीकार किया था कि 'स्वामी जी की शिक्षा स्त्रियों को वेदाधिकार प्रदान करती थी और इस कारण मैं उन से प्रसन्न थी।''

सन् १८७६ में मुंबई में हरिश्चन्द्र चिंतामणी की कन्या का उपनयन संस्कार करने वाले और इससे पूर्व कलकत्ता में हंसादेवी ठाकुर को गायत्री मंत्र का उपेदश देने वाले ऋषि दयानंद १८८० में मुंशी मुख्तावर सिंह, मुंशी समर्थदान तथा लाला शादीराम का भी उपनयन संस्कार करते हैं। स्मरण रहे ऋषि दयानंद से पूर्व और विशेष रूप से मध्यकाल से ब्राह्मणों के अतिरिक्त सभी वर्णस्थ व्यक्तियों को शूद्र समझा गया था, अतः क्रमशः मुगल और आंग्ल काल में महाराष्ट्र केसरी छत्रपति शिवाजी महाराज, बडोदा नरेश सयाजीराव गायकबाड और कोल्हापुर नरेश राजर्षि साहू महाराज को उपनयन आदि वेदोक्त संस्कार कराने हेतु आना कानी करने वाले ब्राह्मणों के कारण मानसिक यातनाओं के बीहड़ जंगल से गुजरना पड़ा था। सन् १८८० में दानापुर में अर्धरात्रि में टहलते हुए ऋषि दयानंद के पैरों की आहट पाकर जब कर्मचारी ने कष्ट का कारण पूछा तो ऋषि दयानंद ने प्रत्युत्तर में कहा था कि 'ईसाई लोग दलितों को ईसाई बनाने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं और अपना रूपया पानी की तरह बहा रहे हैं और इधर हमारे नेता कुंभकर्ण की नींद सो रहे हैं। यही चिंता मुझे विकल कर रही है।'

सन् १८६७ में हरिद्वार में ऋषि दयानंद ने पाखंड खंडिनी पताका गाड़कर जब सार्वजनिक जीवन में अंगद की तरह दृढ़ता पूर्वक कदम रखा था, तभी से वे जन्मना वर्ण व्यवस्था के विरोधी थे। काशी के प्रसिद्ध पं. स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती भी इस कुंभ मेले में उपस्थित थे। जब उन्होंने ''ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत्... मंत्र का यह अर्थ किया कि– 'ब्राह्मण परमेश्वर के मुख से उत्पन्न हुए, क्षत्रिय भुजा से, वैश्य जांघ से और

शूद्र पैरों से उत्पन्न हुए। तब ऋषि ने इसका खंडन करते हुए कहा था कि 'यदि इसका यही अर्थ है तो मुख से खखार भी उत्पन्न होता है। मंत्र का सही अर्थ ब्राह्मण मुख से उत्पन्न हुए नहीं, अपितु मुख के समान है। इससे स्पष्ट हुआ है कि ऋषि दयानंद अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ में भी वर्ण व्यवस्था जन्मजात नहीं, अपितु गुण कर्मानुसार ही मानते थे। सन् १८८२ में उदयपुर में, एक प्रकार से ऋषि दयानन्द के जीवन की संध्या काल में दो साधु उनसे मिले और निवेदन किया कि "आप अधिकारी लोगों को ही उपेदश दिया करें। प्रत्युत्तर में ऋषि ने कहा, 'धर्म के विषय में अधिकार अनधिकार का प्रश्न उठाना सर्वथा व्यर्थ है।

धर्मोपदेश सुनने का मनुष्य मात्र को अधिकार है। आपकी जाति और धर्म के सैकड़ों मनुष्य विधर्मी हो रहें हैं और आप अधिकार–अनधिकार का पचड़ा लिए बैठे हैं। पहले उन्हें तो बचाइए। ऋषि के इसी संदेश को व्यक्त करते हुए श्री कुंवर सुखलाल ने अपनी एक गजल में लिखा था, 'लो दलितों को छाती लगा भाइयों। वरना ये लाल गैरों के घर जायेंगे।

महर्षि दयानंद के अंतःकरण में दलित, शोषित, निर्धनों के प्रति अत्यंत ही करूणा थी। 'संस्कार विधि' में उन्होंने लिखा है, 'धन संपन्न व्यक्ति या संगठन का कर्त्तव्य है कि 'अंत्येष्टि संस्कार हेतु महादरिद्र भिक्षुक को आधे मन से कम घी न देवे।' ऋषि दयानन्द राजस्थान के एक नरेश को अपने पत्र में लिखते हैं, 'शासक यदि भोजन पर बैठा हो और उस समय यदि उसे कहीं से नारी का करूण रूदन सुनाई दे तो उसका कर्त्तव्य है कि वह थाली से उठकर पहले उसके आंसू पोंछे। अपने निष्प्राण शिशु का कफन तन ढकने के लिए वापिस ले आने वाली माँ की विवशता को देख ऋषि दयानंद का करूणावान् हृदय अतिशय विह्वल हो उठा था। महर्षि दयानंद ने जहाँ दलितों का उद्धार किया वहां दलितों से भी अत्यधिक दलित–प्रपीडित स्त्री जाति की भी आंतरिक व्यथा को तहेदिल से दूर करने का प्रयास किया। मौत के जबड़े में जा रही आर्य जाति को अवनति से ऋषि दयानंद बेहद चिंतित थे, इसीलिए उन्होंने एक बार श्री मोहनलाल पंड्या से कहा था, 'धर्माचार्यों के प्रमाद के कारण लोग विधर्मी हो रहे हैं, अतः बढ़ती हुई कुरीतियों और कुनीतियों को नष्ट करने के लिए कड़ूए उपदेशों के कोड़ों से इन सबको जगाना बहुत जरूरी है।

दलितों के उत्कर्ष हेतु ऋषि दयानंद द्वारा अपनाये गए साधन–

'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'– ज्ञानी हुए बिना इंसान की मुक्ति संभव नहीं है अतः ऋषि दयानंद का दलितोद्धार का दलितोद्धार की दृष्टि से भी सबसे महान् कार्य यह था कि उन्होंने सबके साथ दलितों के लिए भी वेद विद्या के दरवाजे खोल दिए। मध्यकाल में स्त्री–शूद्रों के वेदाध्ययन पर जो प्रतिबंध लगाये गये थे आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद ने अपने मेधावी क्रांतिकारी चिंतन और व्यक्तित्व से उन सब प्रतिबंधों को अवैदिक सिद्ध कर दिया। ऋषि दयानंद के दलितोद्धार के इस प्रधान साधन और उपाय में ही उनके द्वारा अपनाये गए अन्य सभी उपायों का समावेश हो जाता है, जैसे–१. दलित स्त्री–शूद्रों को गायत्री मंत्र का उपदेश देना। २. उनका उपनयन संस्कार करना। ३. उन्हें होम–हवन करने का अधिकार प्रदान करना। ४. उनके साथ सहभोज करना। ५. शैक्षिक संस्थाओं में शिक्षा वस्त्र और खान पान हेतु उन्हें समान अधिकार प्रदान करना। ६. गृहस्थ जीवन में पदार्पण हेतु युवक–युवतियों का विवाह जन्मना जाति के आधार पर न करके गुण–कर्म–स्वभाव के अनुसार (अंतरजातीय) विवाह करने की प्रेरणा देना आदि। डॉ. अंबेडकर ने भी स्वीकार किया है कि– "स्वामी दयानंद द्वारा प्रतिपादित वर्ण व्यवस्था बुद्धिगम्य और निरूपद्रवी है।' डॉ० बाबा साहब अंबेडकर मराठवाड़ा

विश्वविद्यालय के उपकुलपति, महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध वक्ता प्राचार्य शिवाजी राव भोसले जी ने अपने एक लेख में लिखा है, 'राजपथ से सुदूर दुर्गम गांव में दलित पुत्र को गोदी में बिठाकर सामने बैठी हुई सुकन्या को गायत्री मंत्र पढ़ाता हुआ एकाध नागरिक आपको दिखलाई देगा तो समझ लेना वह ऋषि दयानंद प्रणीत आर्यसमाज का अनुयायी होगा।

समीक्षकों की दृष्टि में दलितोद्धारक दयानंद—

आर्य समाजी न होते हुए भी ऋषि दयानंद की जीवनी के अध्ययन और अनुसंधान में पन्द्रह से भी अधिक वर्ष समर्पित करने वाले बंगाली बाबू देवेंद्रनाथ ने दयानंद की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए लिखा है, वेदों के अनधिकार के प्रश्न ने तो स्त्री जाति और शूद्रों को सदा के लिए विद्या से वंचित किया था और इसी ने धर्म के मंहतों और ठेकेदारों की गद्दियां स्थापित कीं थीं, जिन्होंने जनता के मस्तिष्क पर ताले लगाकर देश को रसातल में पहुँचा दिया था। दयानंद तो आया ही इसलिए था कि वह इन तालों को तोड़कर मनुष्यों को मानसिक दासता से छुड़ाए।' ऋषि दयानन्द के काशी शास्त्रार्थ में उपस्थित पं. सत्यव्रत सामश्रमी ने भी स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हुए लिखा है, *'शूद्रस्य वेदाधिकारे साक्षात् वेदवचनमपि प्रदर्शितं स्वामीदयानंदेन 'यथेमांवाचम्...इति।* पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय जी के शब्दों मेंयदि ऋषि दयानंद किसी वेद का भाष्य न करते और केवल इसी मंत्र को देकर चले जाते तो इतना कार्य भी वैदिक संस्कृति के उत्थान के लिए पर्याप्त था। डॉ० चंद्रभानु सोनवणे ने लिखा है, 'मध्यकाल में पौराणिकों ने वेदाध्यन का अधिकार ब्राह्मण पुरूष तक ही सीमित कर दिया था, स्वामी दयानंद ने यजुर्वेद के (२६/२) मंत्र के आधार पर मानव मांत्र को वेद की कल्याणी वाणी का अधिकार सिद्ध कर दिया। स्वामी जी इस यजुर्वेद मंत्र के सत्यार्थद्रष्टा ऋषि है। ऋषि दयानंद के बलिदान के ठीक दस वर्ष बार उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए दादा साहब खापर्डे ने लिखा था, 'स्वामी जी ने मंदिरों में दबा छिपाकर रखे गए वेद भंडार समस्त मानव—मात्र के लिए खुले कर दिये। उन्होंने हिन्दू धर्म के वृक्ष को महद् योग्यता से कलम करके उसे और भी अधिक फलदायक बनाया।' 'वेद भाष्य पद्धति को दयानंद सरस्वती की देन' नामक शोध प्रबंध के लेखक डॉ० सुधीर कुमार गुप्त के अनुसार 'स्वामी जी' ने अपने वेदभाष्य का हिन्दी अनुवाद करवाकर वेदज्ञान को सार्वजनिक संपत्ति बना दिया।'

पं० चमूपति जी के शब्दों में 'दयानंद की दृष्टि में कोई अछूत न था। चाहे उमेदा नाई हो या मलकाना रूस्तम सिंह। उनकी दया बल—बली भुजाओं ने उन्हें अस्पृश्यता की गहरी गुहा से उठायी और आर्यत्त्व के पुण्य शिखर पर बैठाया था।' हिंदी के सुप्रसिद्ध छायावादी महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने लिखा है, "देश में महिलाओं, पतितों तथा जाति पांति के भेदभाव को मिटाने के लिए महर्षि दयानंद तथा आर्य समाज से बढ़कर इस नवीन विचारों के युग में किसी भी समाज ने कार्य नहीं किया। आज जो जागरण भारत में दीख पड़ता है, उसका प्रायः संपूर्ण श्रेय आर्य समाज को है। महाराष्ट्र राज्य संस्कृति संवर्धन मंडल के अध्यक्ष मराठी विश्वकोष निर्माता तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी ऋषि दयानन्द की महत्ता प्रतिपादित करते हुए लिखते हैं, "सैकड़ों वर्षों से हिन्दुत्व के दुर्बल होने के कारण भारत बारंबार पराधीन हुआ। इसका प्रत्यक्ष अनुभव महर्षि स्वामी दयानन्द ने किया। इसलिए उन्होंने जन्मना जाति भेद और मूर्तिपूजा जैसे हानिकारक रूढ़ियों का निर्मूलन करने वाले विश्वव्यापी महत्त्वाकांक्षा युक्त आर्यधर्म का उपेदश किया। इस श्रेणी के दयानन्द यदि हजार वर्ष पूर्व उत्पन्न हुए होते तो इस देश को पराधीनता के दिन न देखने पड़ते। इतना ही नहीं, प्रत्युत विश्व के एक महान् राष्ट्र के रूप में भारत वर्ष देदीप्यमान रहता था।'

—प्राध्यापक

हिन्दी विभाग नेताजी सुभाषचन्द्र बोस महाविद्यालय,

नान्देड़ (महा.)

महर्षि दयानन्द की मानवता को देन

डा० पीयूष राय

महर्षि दयानन्द का जन्म १८२४ में मोरवी राज्य, काठियावाड़, गुजरात में एक सारस्वत परम्परावादी ब्राह्मण परिवार में हुआ। २० वर्ष की आयु में ही हिन्दुओं की धार्मिक परम्परा पर से आस्था हट गयी और उन्होंने अनुभव किया कि मूर्तिपूजा और बहुदेवतावाद व्यर्थ तथा हानिकारक है। सन् १८६० ई० में उन्होंने मथुरा में स्वामी विरजानन्द जी के पास अध्ययन किया तथा १८६४ में जनता में प्रचार तथा उपदेश करना प्रारम्भ कर दिया। अपने प्रवचनों में संस्कृत भाषा का प्रयोग करते थे, परन्तु साधारण जनता द्वारा न समझ सकने के कारण जन भाषा अर्थात् हिन्दी में प्रवचन प्रारम्भ कर दिया। १० अप्रैल १८७५ ई० में सर्व प्रथम बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की तथा १८७७ में लाहौर में आर्य समाज के विधान को अन्तिम रूप दिया। उन्होंने कई पुस्तकें लिखी, जिनमें सर्वाधिक तथा सारगर्भित "सत्यार्थ प्रकाश" है। ३० अक्टूबर १८८३ ई० को महर्षि के पार्थिव शरीर का अन्त हुआ।

श्रीमती सरोजनी नायडू ने कहा था "महर्षि दयानन्द उस दर्पण के समान हैं जिसमें लोग प्रत्येक प्रकार के रंग देखते हैं। कोई उन्हें ऋषि, कोई राजनैतिक नेता, कोई सच्चा मानव एवं कोई धार्मिक नेता कहता है परन्तु मैं उन्हें बौद्धिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं हर प्रकार की दासता से मुक्तिदाता मानती हूँ।"

वस्तुतः लगभग १५० वर्ष पूर्व भारत में हुए सांस्कृतिक पुनर्जागरण में प्रत्येक प्रदेश के जागृति के अंकुर फूट रहे थे, कहीं नामधारी सम्प्रदाय के विज्ञजन, कहीं राजा राममोहन राय, कहीं देवेन्द्रनाथ टैगोर, कहीं केशवचन्द्र सेन, किन्तु इन सब द्वारा चलाये गये आन्दोलन यद्यपि बहुपक्षीय थे, किन्तु महर्षि दयानन्द ने समय की मुख्य धारा व आवश्यकता को अपनी अन्तर्दृष्टि से परखा जाना और जर्जरित होती सामाजिक व्यवस्था, सिसकती हुई आध्यात्मिकता व कुचली हुई नैतिकता को नवीन प्राण दिये। जहाँ केशवचन्द्र सेन ने उपनिषदों के आधार पर अपनी सिद्धान्तों की नींव रखी, वहीं स्वामी जी ने पुरातन सनातन वैदिक परम्परा को पुनर्जीवित करने हेतु शंखनाद करते हुए "वेदों की ओर लौटो" का नारा दिया। हम तो विदेशी सभ्यता, संस्कृति व भाषा के व्यामोह में अपना नाम जन्म स्थान, भाषा व संस्कृति को भूलकर स्वयं को विदेशी समझ रहे थे। पाश्चात्य ज्ञान व भाषा के प्रति मोह लार्ड मैकाले के ही समान था, यह विचार करते थे कि अंग्रेजों ने हमें ज्ञान दिया, अतः हम आजीवन उनके ऋणी हैं, किन्तु वाह रे देव दयानन्द उन्होंने तो अन्तर्साक्ष्य के आधार पर ही वेदों से तर्कपूर्ण उक्तियां देकर हमारे ज्ञान चक्षु खोल दिये। हमें बताया कि हम आर्य हैं। हम बाहर कहीं से नहीं आये, अपितु हम ही यहाँ के मूल निवासी हैं। हमारी संस्कृति वेदों की है। हमारी भाषा समस्त भाषाओं की जननी देववाणी 'संस्कृत' है। हमें अपने आप से परिचित कराया। जहाँ यह मान्यता थी कि स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम् और इसे शंकराचार्य तथा अन्य

पौराणिक विद्वानों की मान्यता प्राप्त थी। महर्षि दयानन्द ने प्रबल तर्कों के आधार पर वेदवाणी पढ़ने–सुनने का अधिकार प्राणी मात्र को है क्योंकि यह परमात्मा की वाणी है। परमात्मा द्वारा प्रदत्त वस्तु सूर्य–चाँद की रोशनी, वायु तथा अन्य सृष्टि के पदार्थ पर सबका बराबर अधिकार है, उसी तरह वेद पढ़ने–पढ़ाने सुनने–सुनाने का अधिकार सब आर्यों को है। इसके लिए यजुर्वेद का प्रमाण दिया–

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।

–यजुर्वेद २६/२

इसी प्रकार हिन्दू समाज में व्याप्त अस्पृश्यता का विरोध किया। महात्मा गाँधी, स्वामी दयानन्द जी की प्रशंसा, करते हुए कहते हैं, "अस्पृश्यता के विरूद्ध स्वामी दयानन्द की सुस्पष्ट घोषणा असन्दिग्ध रूप से हमारे लिए उनके समृद्ध दाय में से एक है। "महर्षि दयानन्द की शुद्धि आन्दोलन के प्रति एक क्रान्तिकारी योजना थी। उनका विचार था कि खोये हुए हिन्दुओं को जो दूसरे मतों में चले गये हैं, वापस लेना चाहिए। सामाजिक सुधार में उन्होंने बाल–विवाह, वृद्ध–विवाह तथा बहुपत्नी विवाह का निषेध करके, विधवा विवाह व नियोग प्रथा को प्रोत्साहन दिया। हिन्दुओं में प्रचलित असंख्य जाति–उपजाति की प्रथा को वैदिक समाज संगठन के विरूद्ध कहा कि जाति जन्म से नहीं वरन् व्यक्ति के कर्म से होती है। हरिद्वार में सर्वप्रथम पाखण्ड खण्डिनी पताका फहराकर ढोंगियों, मठाधीशों को चुनौती देते हुए अन्धविश्वास, कुरीतियों, कुप्रथाओं, अनीतियों व मूर्तिपूजा की तर्क व शास्त्रार्थ के आधार पर नींव हिलाकर रख दी। उन्हीं से प्रेरणा पाकर स्व० दीवानबहादुर हरिविलास शारदा ने तत्कालीन केन्द्रीय धारा में बाल–विवाह निरोधक कानून प्रस्तुत किया, जो शारदा ऐक्ट के नाम से पारित हुआ।

राजनैतिक क्रान्ति लाने में स्वामी जी निरन्तर राजाओं, महाराजाओं एवं रजवाड़ों को स्वराज्य की प्रेरणा देते रहे। श्रीमती ऐनीबेसेन्ट ने यहाँ तक लिख दिया कि ऋषि दयानन्द ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने भारत वासियों के लिए "India for Indians" की घोषणा की। स्वराज्य के लिए स्वामी जी की प्रेरणा स्रोत ऋग्वेद मं० १ सूक्त ८० तथा अथर्ववेद काण्ड १२ सूक्त १। वह सुराज्य से स्वराज्य को श्रेष्ठ मानते थे। उनके हृदय के उद्‌गार सत्यार्थ प्रकाश में प्राप्त हैं– "विदेशी राजा यदि पुत्र के समान प्रजा का पालन करते हों तो भी अच्छा नहीं है किन्तु स्वदेशी राजा दुष्ट भी हो तो अच्छा है।" श्याम जी कृष्ण वर्मा को स्वतन्त्रता हेतु पूर्ण सशस्त्र तैयारी के लिए लन्दन भेजा। स्वतन्त्रता संग्राम में ७०–६० प्रतिशत सेनानी ऋषि के विचारों से प्रभावित थे जिससे सरदार अजित सिंह, भाई परमानन्द, चन्द्रशेखर आजाद,राम प्रसाद बिस्मिल, स० भगत सिंह आदि ने साम्राज्यवाद की जड़ों को हिलाकर रख दिया। यहाँ तक की सरदार अजित सिंह ने इटली में आजाद लश्कर नामक सैन्य दल की स्थापना की, जो कि बाद में सुभाषचन्द्र बोस द्वारा "आजाद हिन्द फौज" के रूप में परिणत कर दी गई। स्वामी जी की प्रेरणा व शिष्यत्व में गोविन्द रानाडे, राष्ट्रीय भावना से प्रभावित हुए। उनकी परम्परा में गोपाल कृष्ण गोखले ने राष्ट्रीयता का विचार मूर्तरूप में प्राप्त किया। गोखले से गाँधी जी ने राष्ट्र प्रेम व जागृति की भावना ग्रहण की। इस प्रकार परम्परा से स्वतन्त्रता हेतु जागरण का सूत्रपात महर्षि से ही प्रारम्भ हुआ। गुजराती भाषी होते हुए तथा संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी, स्वामी जी ने अपने ग्रन्थों का भाष्य आर्य भाषा (हिन्दी) में किया, क्योंकि वे जानते थे कि राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन हिन्दी जैसी ही समर्थ व जन–जन की भाषा हो सकती है। हिन्दी को सरकारी

कार्यालयों की भाषा बनाने के लिए सर्वप्रथम आन्दोलन किया तथा राजस्थान के अपने शिष्य राजाओं की राजसभा में प्रस्ताव पारित कराया। शिक्षा के क्षेत्र में महर्षि ने तत्कालीन पाश्चात्य शिक्षा को सर्वथा देश के लिए अनुपयोगी बताते हुए वैदिक गुरूकुल प्रणाली को प्रोत्साहन दिया जिसमें भारतीय संस्कृति का सच्चा पाठ पढ़ाते हुए वैदिक वाङ्मय से छात्रों को परिचित कराया जायेगा। इसके अतिरिक्त राजकुमार हो अथवा दरिद्र का पुत्र, सबके लिए समान वेशभूषा, भोजन तथा आवास की व्यवस्था होगी। गुरूकुल में रहने वाले छात्रों को शारीरिक, मानसिक नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास के साथ–साथ अन्तर्निहित शक्तियों का सर्वाङ्गीण विकास दिया जायेगा। उन्हीं की प्रेरणा से स्वामी श्रद्धानन्द ने उनके स्वप्न को साकार करते हुए गुरूकुल कांगड़ी की स्थापना की जो आज अपनी पूर्व भव्यता के साथ प्राच्य शिक्षा का विख्यात केन्द्र है।

स्वामी जी ने संसार के कल्याण हेतु आर्य समाज संगठन की स्थापना की जिसका उद्देश्य संसार का कल्याण करना है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक, व सामाजिक उन्नति करना। इसके १० नियम बताये। वस्तुतः ये नियम विश्व शांति के १० सूत्र हैं अर्थात् मानवता के कल्याण हेतु १० संकल्प हैं। आज विश्व में जो समस्यायें मुख बाये, समस्त मानवता को निगलने के लिए तैयार हैं, उन सब का निदान महर्षि के सन्देशों को जीवन में अपनाने से ही सम्भव है। आज महर्षि के सिद्धान्तों की बड़ी संख्या में लोग अपना रहे हैं। कहीं दलितोद्धार, विधवा विवाह, शुद्धि प्रचार, स्वदेशी तथा हिन्दी भाषा का प्रसार।

आर्य समाज के रचनात्मक कार्यों से ही इस देश तथा आर्य जाति का भला हो सकता है। आवश्यकता है केवल जन–जागृति लाने की। इसके लिए सर्वप्रथम वर्णाश्रम व्यवस्था को पुनर्जीवित करना होगा। आर्य समाज के सिद्धान्तों के छोटी २ लघु पुस्तिकाएं (ट्रैक्ट) सस्ते दामों में या निःशुल्क, सभी परिवारों में वितरित किया जाए। मलिन बस्तियों में जाकर, उनकी समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया जाए। कम से कम प्रत्येक आर्य समाज के सदस्य तो ये संकल्प लें कि वह अपने पुत्र व पुत्री का विवाह जाति विशेष में न करके वरन् गुण कर्म व स्वभाव के आधार पर बिना दहेज के, आर्य परिवारों में करें। अपना प्रत्येक कार्य आर्य भाषा अर्थात् हिन्दी में करें। वैदिक विचारों को जन–जन तक पहुँचाने की प्रतिज्ञा तथा पं० लेखराम जी की तरह "लेखनी चलती रहे, रुकने न पाये" ऐसा संकल्प लें।

अतः यदि हम वैदिक सिद्धान्तों के पोषक हैं आर्य विचारों के ग्राहक हैं, तो हमें कष्ट सहकर भी, विष पीकर भी, ईंट पत्थर की मार सहकर भी महर्षि के सन्देशों को घर–घर पहुंचाना होगा, तभी देश का कल्याण हो सकता है व विश्व शान्ति हो सकती है।

–एम.बी.बी.एस.
कानपुर

पाठकों से

आप अपने बच्चों, मित्रों व सम्बन्धियों के अनुभव अवनी में छपने हेतु भेज सकते हैं।

अवनी कार्यालय
'अक्षयम्'
एस. २/५०३ क १–४, सिकरौल, वाराणसी, फोन : २३८२७८९

ध्वनिविज्ञान — एक सामान्य परिचय

डा० निरूपमा त्रिपाठी

मानव सभ्यता मूल रूप से अनुभूतियों के आदान–प्रदान पर आधारित है। अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है– भाषा। भाषाओं का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन करने वाली ज्ञान की शाखा को 'भाषाविज्ञान' के नाम से जाना जात। है। सुप्रसिद्ध भाषाविद् डॉ० बाबूराम सक्सेना के मतों में –"एक प्राणी अपने किसी अवयव द्वारा दूसरे प्राणी पर जो कुछ व्यक्त कर देता है वही विस्तृत अर्थ में भाषा है।

भाषाविज्ञान के अन्तर्गत जिस प्रकार की भाषा का अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाता है, उसे भाषा का यह व्यापकतम रूप अभिप्रेत नहीं है। ध्वनियों के विशिष्ट संयोजन से निर्मित सार्थक भाषा, जिसके माध्यम से मनुष्य अपने भावों तथा विचारों का प्रकाशन करता है, वही भाषा विज्ञान के अन्तर्गत ग्राह्य है। भाषा की अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में ध्वनि, रूप, वाक्य एवं अर्थ, इन चार तत्त्वों को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ये ही भाषाविज्ञान के अध्ययन की मुख्य शाखाएं हैं।

'ध्वनि' भाषा की लघुतम इकाई है। भाषा ध्वन्यात्मक शब्दों के माध्यम से ही विचारों एवं भावों को प्रकट करती है। आचार्य पतञ्जलि ने अपने 'महाभाष्य' में लिखा है कि शब्द दो रूप का होता है– एक स्फोटरूप और दूसरा ध्वनिरूप है। स्फोट की अभिव्यक्ति कराने वाले श्रूयमाण वर्णों को ही ध्वनि की संज्ञा दी जाती है। ध्वनि–विज्ञान के अन्तर्गत भाषा की ध्वनियों से सम्बन्ध रखने वाले अवयवों, ध्वनि–लहर, श्रवण, ध्वनियों के प्रकार, ध्वनि परिवर्तन के कारणों आदि पर विचार किया जाता है।

ध्वनि–अध्ययन के मुख्यरूप से तीन आधार हैं– उच्चारण, प्रसरण या संवहन तथा श्रवण। इस आधार पर ध्वनिविज्ञान की तीन प्रमुख शाखाएँ हो जाती हैं–

(क) औच्चारणिक ध्वनि–विज्ञान–

उच्चारण से सम्बद्ध तथ्यों का अध्ययन औच्चारणिक ध्वनिविज्ञान के अन्तर्गत होता है। ध्वनियों के माध्यम से विचारों का सम्प्रेषण ध्वनियों को उच्चरित किये बिना नहीं किया जा सकता। ध्वनियों का उच्चारण वाग्यन्त्र से होता है जिन्हें उच्चारणावयव भी कहा जाता है। ध्वनियों के उत्पादन की प्रक्रिया में उच्चारण–तन्त्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह उच्चारण–तन्त्र दो प्रकार का होता है, एक स्थिर तथा दूसरा चल। कण्ठ–नालिका, नासिका–विवर, तालु के कतिपय भाग, ऊपरी ओष्ठ, दाँत स्थिर उच्चारण–यन्त्र हैं तथा स्वर तन्त्री, जिह्वा, नीचे का ओष्ठ आदि चल उच्चारण–यन्त्र कहलाते हैं।

वस्तुतः सुनाई देने वाली ध्वनियों के उच्चारण की प्रक्रिया का प्रारम्भ फेफड़े द्वारा निःसृत वायु से ही होता है। इसी वायु को उच्चारण यन्त्र द्वारा विभिन्न स्थानों पर अवरूद्ध करके हम भिन्न–भिन्न प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न करते हैं। मानव–शरीर के गलबिल के दो भाग होते हैं– श्वास–नलिका तथा भोजन–नलिका। दोनों एक दीवाल के माध्यम से पृथक्–पृथक्, बंटी हुई हैं। श्वास–नलिका से फेफड़े से निकलती हुई वायु गुजरती है। यद्यपि फेफड़े तथा श्वास–नलिका ध्वनि–यन्त्र को वायु प्रदान करने के रूप में उच्चारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं किन्तु इन्हें ध्वनि–यन्त्र का भाग नहीं माना जाता क्योंकि इनके माध्यम से निःसृत वायु कोई ध्वन्यात्मक रूप नहीं पाती है। मुख्यरूप से उच्चारण–तन्त्र में निम्नलिखित अवयव आते हैं–

(१) स्वरयन्त्र (२) स्वर तन्त्री (३) अभिकाकल या स्वरयन्त्रावरण (४) नासिका विवर (५) मुख विवर (६) अलिजिह्वा (७) कण्ठ (८) कोमल तालु (६) मूर्धा (१०) कठोर तालु (११) वर्त्स्य (१२) दाँत (१३) ओष्ठ (१४) जिह्वा मध्य (१५) जिह्वा नोक (१६) जिह्वाग्र (१७) जिह्वः (१८) :जिह्वा पश्च (१६) :जिह्वा मूल।

(ख) सांवहनिक अथवा प्रासरणिक ध्वनिविज्ञान–

ध्वनियों का उच्चारण करने वाला व्यक्ति सामान्यतया स्वयं अपने लिए ध्वनियों को उच्चरित नहीं करता अपितु उसका उच्चारण दूसरों के लिए ही होता है। सांवहनिक या प्रासरणिक ध्वनिविज्ञान के अन्तर्गत इस तथ्य का अध्ययन किया जाता है कि ध्वनि उच्चरित होने के पश्चात् कैसे लहरों के माध्यम से वक्ता के मुख से श्रोता के कानों तक पहुँच जाती है? लहरों का विशद अध्ययन भौतिक–शास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है।

(ग) श्रावणिक ध्वनिविज्ञान–

श्रावणिक ध्वनिविज्ञान के अध्ययन का मुख्य विषय यह है कि वक्ता के मुख से निकली ध्वनि को श्रोता के कानों द्वारा कैसे सुना जाता है? ध्वनि विज्ञान की इस शाखा का अध्ययन अभी अपनी आरम्भिक अवस्था में है। जब उच्चरित ध्वनियों की तरंगें मनुष्य के कर्णकुहर में प्रविष्ट होती हैं तब श्रवण–तन्त्रिकाओं में कम्पन होता है। इसके पश्चात् ही मनुष्य ध्वनियों को ग्रहण करता है। ध्वनि–ग्रहण की यह प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है। यही कारण है कि ध्वनि–विज्ञान की इस शाखा का अधिक विस्तार नहीं हो सका।

उच्चरित होने वाली ध्वनियों का वर्गीकरण भी ध्वनिविज्ञान का एक महत्वपूर्ण विषय है। उच्चारण संवहन और श्रवण के आधार पर तो ध्वनियों को कई प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है किन्तु ध्वनियों का सबसे प्रचलित और प्राचीन वर्गीकरण स्वर और व्यञ्जन के रूप में मिलता है। भाषा–वैज्ञानिक स्वर और व्यञ्जन को इस रूप में परिभाषित करते हैं–

"स्वर वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से मुख–विवर से निकल जाती है।" "व्यञ्जन वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से नहीं निकल पाती या तो इसे पूर्ण अवरूद्ध होकर फिर आगे बढ़ना पड़ता है या किसी भाग को कम्पित करते हुए निकलना पड़ता है। इस प्रकार वायु–मार्ग में पूर्ण या अपूर्ण अवरोध उपस्थित होता है।"

परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत नियम है। भाषा की मूलभूत इकाई ध्वनि भी इस परिवर्तन से अप्रभावित नहीं रह सकी। उच्चारण एवं प्रकार के साथ ही साथ ध्वनियों का विकास अथवा परिवर्तन भी ध्वनिविज्ञान के अध्ययन का मुख्य विषय है। ध्वनियों में यह परिवर्तन कभी वर्णागम कभी वर्णलोप तो कभी वर्ण–विपर्यय के रूप में देखा जाता है। स्त्री का इस्त्री, जन्म का जनम, स्थाली का थाली, कोकिल का कोइल, पहुँचना का चहुँपना इत्यादि। इसी प्रकार के परिवर्तन के उदाहरण हैं। ध्वनियों के इस परिवर्तन के आभ्यन्तर और बाह्य अनेक कारण होते हैं। जैसे वाक्यन्त्र की विभिन्नता, अज्ञान, प्रयत्न–लाघव, भौगोलिक परिस्थितियाँ, वर्णों का सादृश्य आदि ध्वनिपरिवर्तन के कारण माने गये हैं।

इस प्रकार ध्वनिविज्ञान के अन्तर्गत ध्वनियों का अनेकानेक पहलुओं से शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक अध्ययन यह सिद्ध करता है कि ध्वनिविज्ञान भाषा विज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है। भाषा की उत्पत्ति और विकास को समझने में ध्वनि विज्ञान का अध्ययन अपरिहार्य है। किसी भी भाषा की यदि शिक्षा लेनी हो तो उस भाषा विशेष के ध्वन्यात्मक विश्लेषण द्वारा उसे सरलता से अधिगत किया जा सकता है। इतना ही नहीं अपनी मातृभाषा के सही उच्चारण के लिए भी ध्वनिविज्ञान की उपादेयता असंदिग्ध है।

–कानपुर

दीपावली

धर्मवीर विद्यालंकार

मैंने नन्हा दीप जलाया,
मैंने सुन्दर दीप जलाया,
घर–घर में यह दीप जलाया,
घर–घर में शुभ दीप जलाया।।
मैंने नन्हा...
मेरी ऊँची आशाएं हैं
मेरी भोली आशाएं हैं
घर–घर की अभिलाषाएं हैं,
मीठी–मीठी मस्त–जवानी
की लहराती भाषाएं हैं।
इनको कौन बुझाने आया ?
घूल–धूसरिन करने आया ?
उसको हम सब भस्म करेंगे,
इसी भाव से दीप जलाया।
मैंने नन्हा...
दयानन्द के प्रति–
विजय सत्य का एक और था,
धना अंधेरा चहुं ओर था,
अपना जीवन दीप जलाकर
दयानन्द ने हमें जगमगाया।
मैंने नन्हा ......
आह्वान–
घर–घर रावण छिपा हुआ है,
अत्याचारी बढ़ा हुआ है।
उसे मिटाना, चूर्ण बनाना
इसीलिए यह दीप जलाया
मैंने नन्हा...

–ज्वालापुर

जलते रहो दीप की तरह

सुरेश कुमार अकेला

"जलते रहो दीप की तरह"
दीप की तरह यूं ही जलते रहो।
कभी किसी कर दीपक बुझाना नहीं,
बुझ गया हो किसी गर दीपक यहां,
ऐसे मानव का दिल तुम दुखाना नहीं,
दीप की तरह यूं, ही जलते रहो।
जो मिला है सफर जिन्दगी कर तुम्हें,
इसमें आती बहुत है आँधियाँ और तूफाँ,
ऐसे राह में तुम बुझ न जाना कहीं,
दीप की तरह यूं ही जलते रहो।
यह माना की है आज यहाँ पर निशा,
कल होगी सुबह और दिखेगी दिशा,
इस अन्धेरे में तुम खो न जाना कहीं
दीप की तरह यूँ ही जलते रहो।
व्याधियों से घिरी है ये प्यारी दिशा
करता वर्षा है पत्थर का यह आसमां,
ऐसे संकट में तुम घबराना नहीं,
दीप की तरह यूँ ही जलते रहो।
जो मरे, मिटे हैं वतन के लिए,
थे वो भारत माँ के जतन के लिए,
ऐसे वीरों को तुम कभी भुलाना नहीं,
दीप की तरह यूं, ही जलते रहो।

–वाराणसी

प्राण ऊर्जा का संतुलन स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है

सोमदेव करवा

आत्मा अनन्त शक्ति का स्रोत–

आत्मा अनन्त शक्ति का धारक है परन्तु कर्मों के आवरण के कारण उसकी ऊर्जा का पूर्ण विकास अवरूद्ध हो जाता है। जैसे की कर्मों का आवरण सम्पूर्ण रूप से दूर हो जाता है तब ही उसकी अनन्त शक्ति प्रकट हो जाती है। उस अवस्था में उसको वर्तमान, भूत् एवम् भविष्य के सारे पदार्थों की सूक्ष्मतम जानकारी हो जाती है। इसी कारण जब तक जीवन है तब तक उसमें ऊर्जा का अक्षय भंडार संग्रहित रहता है, जो मृत्यु अर्थात् शरीर में से आत्मा निकल जाने के पश्चात् क्षीण हो जाता है। रोग की उत्पत्ति का भी प्रमुख कारण आत्मा से ही होता है। उसके अनुरुप वातावरण एवम् परिस्थितियां मिलती हैं। मनः स्थिति बनती है जिसकी अभिव्यक्ति पहले भावों के रुप में, फिर शरीर में अवयवों के परिवर्तन तथा अन्त में शारीरिक लक्षणों के रुप में होती है। हम प्रायः देखते हैं जब कोई व्यक्ति हमें नुकसान पहुँचाता है तो पहले मस्तिष्क इस बात का निर्णय करता है कि कितना नुकसान हुआ तथा उसके पश्चात उस हानि की प्रतिक्रिया स्वरुप दुःख अथवा क्रोध की अभिव्यक्ति होती है। इसी प्रकार जब हम किसी बुद्धिमान अथवा सज्जन व्यक्ति को अनहोनी हरकत करते देखते हैं तो मस्तिष्क की प्रतिक्रिया स्वरुप हंसी आती है। अतः उपचार करते समय जो चिकित्सा पद्धतियां रोग के शारीरिक लक्षणों तक ही अपना निदान और उपचार को सीमित रखती है उनमें भले ही बाह्य रोगों में राहत मिल जाये रोग का पूर्ण उपचार संभव नहीं।

प्राण ऊर्जा क्या है ?

संसार में दो तत्व प्रमुख हैं। प्रथम जीव, आत्मा अथवा चेतना और दूसरा अजीव, जड़ या अचेतन। इन तत्वों से ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की संरचना होती है। इसी आधार पर ऊर्जा को भी मोटे रुप में दो भागो में विभाजित किया जा सकता है। पहली चैतन्य अथवा प्राण ऊर्जा और दूसरी भौतिक ऊर्जा। जिस ऊर्जा के निर्माण, वितरण, संचालन और नियन्त्रण हेतु चेतना की उपस्थिति आवश्यक होती है, उस ऊर्जा को प्राण ऊर्जा और बाकी सभी ऊर्जाओं को जड़ अथवा भौतिक ऊर्जा कहते हैं। भौतिक विज्ञान प्रायः जड़ पर ही आधारित होता है अतः उसकी सारी शोध एवम् चिन्तन जड़ पदार्थों के निर्माण तक ही सीमित रहती हैं। जब तक शरीर में आत्मा अथवा चेतना का अस्तित्व रहता है प्राण ऊर्जा क्रियाशील होती है, परन्तु उसकी अनुपस्थिति में अर्थात् मृत्यु के पश्चात् प्राण ऊर्जा के अभाव में मानव शरीर का कोई महत्व नहीं अतः उसे जला अथवा दफना कर नष्ट कर दिया जाता है। आत्मा अथवा चेतना अरुपी है अतः उसकी प्राण ऊर्जा भी अरुपी होती है तथा शरीर के अदृश्य भागों से ही प्रवाहित होती है। फिर भी उसके प्रभावों का अनुभव किया जा सकता है।

प्राण ऊर्जा के असंतुलन से ही आवेग आते हैं क्रोध, भय, चिंता, दुःख, निराशा, अधीरता उसी का परिणाम है। क्रोध में व्यक्ति दुःख को भूल जाता है। अधिक भय से कभी–कभी अचेतनता तक आ सकती है। आनन्द, खुशी, प्रसन्नता सारे शरीर की रासायनिक प्रक्रिया बदल देती है। ज्यादा चिन्ता से भूख मर जाती है। आवेग का हृदय से तथा तनाव का मस्तिष्क से सीधा संबन्ध है अतः इन अंगों की प्राण ऊर्जा को यदि किसी विधि द्वारा संतुलित कर दिया जावे तो उपचार अधिक प्रभावशाली हो जाता है। उपचार जितना उच्च स्तरीय होता होगा, प्रायः उतना ही शीघ्र, स्थायी एवम् प्रभावशाली होगा।

मानव जीवन में पर्याप्तियों की भूमिका –

मां के गर्भ में आते ही कर्मों की स्थिति के अनुसार जीव को एक विशेष प्रकार की ऊर्जा प्राप्त होती है जिसके द्वारा जीव आहार को शरीर एवम् इन्द्रियों में परिणत करता है। इस परिणमन करने की जीवनदायिनी मूल ऊर्जा को जैन धर्म में पर्याप्ति कहते हैं। मनुष्य को आहार, शरीर, इन्द्रिय के अलावा श्वासोच्छवास, भाषा और मन पर्याप्ति भी प्राप्त होती है। श्वासोच्छवास पर्याप्ति से ही वायुमण्डल से श्वसन योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर शरीर के लिये आवश्यक विशेष ऊर्जा में परिणत करता है। भाषा पर्याप्ति के कारण ही जीव भाषा योग्य सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण कर बोलने की योग्यता प्राप्त करता है। जिन जीवों में भाषा पर्याप्ति का अभाव होता है, वे मुंह होते हुए भी बोल नहीं सकते। मन पर्याप्ति के प्रभाव से जीव में मनोर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर द्रव्य मन की सहायता से चिन्तन मनन में परिणत करने की क्षमता प्राप्त होती है। जिन जीवों को मन पर्याप्ति प्राप्त नहीं होती, वे मनुष्य की भांति मनन चिन्तन अध्ययन आदि नहीं कर सकते। उपचार करते समय जब तक चेतना के विकास के इस क्रम की उपेक्षा होगी, निदान अपूर्ण और उपचार अस्थायी होगा।

प्राण क्या है ?

जिस शक्ति विशेष द्वारा जीव जीवित रहता है अर्थात् जीवन जीने की शक्ति को प्राण कहते हैं। कानों के द्वारा शब्दों को ग्रहण करने अथवा सुनने की शक्ति विशेष श्रोत्र इन्द्रिय बल प्राण, आखों के द्वारा देखने की शक्ति विशेष चक्षु इन्द्रिय बल प्राण। नासिका द्वारा गंध ग्रहण करने की शक्ति विशेष घ्राणेन्द्रिय बल प्राण, जीभ के द्वारा स्वाद पहिचानने की शक्ति रसनेन्द्रिय बल प्राण, पदार्थ में रहे हुये गर्म, ठंडे, भारी, हल्का, कोमल, कठोर आदि स्पर्शों को पहिचानने की शक्ति विशेष स्पर्शेन्द्रिय, बल प्राण, मन की सहायता से चिन्तन मनन करने की शक्ति विशेष मनोबल प्राण, भाषा वर्गणा के पुद्गलों की सहायता से वाणी की अभिव्यक्ति की विशेष ऊर्जा वचन बल प्राण। शरीर के माध्यम से उठने–बैठने, हलन–चलन करने की विशेष शक्ति काय बल प्राण, श्वासोच्छ्वास वर्गणा के पुद्गलों की सहायता से श्वास लेने और बाहिर निकालने का शक्ति विशेष श्वासोच्छ्वास बल प्राण तथा निश्चित समय तक भव में जीवित रहने की शक्ति विशेष आयुष्य बल प्राण कहलाती है। आयुष्य बल प्राण के अभाव में अन्य प्राणों का कोई अस्तित्व नहीं। प्रत्येक व्यक्ति की एक निश्चित आयुष्य होती है जिसका निर्धारण उसके पूर्व भव में ही हो जाता है। अन्य प्राणों की स्थिति बदल सकती है। क्षय के साथ–साथ उन प्राणों का निर्माण भी हो सकता है। विविधता के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति के सुनने, देखने, चखने, सूंघने, चिन्तन मनन करने, वाणी की अभिव्यक्ति आदि अलग–अलग होती है। कभी–कभी भौतिक उपचारों से कान, नाक, चक्षु, जीभ आदि इन्द्रियों के द्रव्य उपकरणों में उत्पन्न खराबी को दूर किया जा सकता है परन्तु उनमें प्राण ऊर्जा न होने से भौतिक उपचार सफल नहीं होते। इसी कारण सभी नेत्रहीनों को नेत्र प्रत्यारोपण द्वारा रोशनी नहीं दिलाई जा सकती। सभी बहरे उपकरण लागने के बाद भी सुन नहीं सकते। ये सभी दस प्राण द्रव्य कहलाते हैं जो सभी योनियों के सभी जीवों में नहीं पाये जाते परन्तु ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति चार भव प्राण कहलाते हैं जो कम ज्यादा मात्रा में अवश्य पाये जाते हैं।

प्राण ऊर्जा का अपव्यय हानिकारक–

प्राण और पर्याप्तियों पर ही हमारा स्वास्थ्य निर्भर है। शरीर एवम् प्राण का परस्पर सम्बन्ध न जानने पर कोई भी व्यक्ति न तो प्राणों का अपव्यय अथवा दुरूपयोग ही रोक सकता है और न अपने आपको नीरोग ही रख सकता है। आत्मिक आनन्द और सच्ची शांति तो प्राण ऊर्जा के सदुपयोग से ही प्राप्त होती है। यही प्रत्येक मानव के जीवन का लक्ष्य है। प्रतिक्षण हमारे प्राणों का क्षय और निर्माण हो रहा है अतः हमारी सारी प्रवृत्तियां यथासंभव सम्यक् होनी चाहिये। पांचों इन्द्रियों, मन, वचन, काया का संयम स्वास्थ्य में सहायक होता है तथा उनका असंयम रोगों को आमन्त्रित करता है। हवा, भोजन और पानी से ऊर्जा मिलती है परन्तु

उनका उपयोग कब, कैसे, कितना, कहां का ज्ञान और उसके अनुरूप आचरण आवश्यक है। स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग भी ऊर्जा के स्रोत हैं जिसका जीवन में आचरण आवश्यक है। प्राण ऊर्जा के सदुपयोग से शरीर स्वस्थ, मन संयमित, आत्मा जागृत और प्रजा विकसित होती है।

शरीर से ही आत्मा और मन के भावों की अभिव्यक्ति होती है–

मन शरीर के सभी विषयों को अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है। मन और वचन का अलग से कोई अस्तित्व नहीं। सभी बनते हैं काया के द्वारा। जो मन के लिये सामग्री चाहिए उसका आकर्षण काया के द्वारा होता है। मनन से पहले और मनन के बाद में भी मन नहीं होता। उसी प्रकार बोलने के पहिले और बोलने के पश्चात् भाषा नहीं होती। भाषा और मन का अस्तित्व शरीर पर निर्भर है। जीव शरीर को उत्पन्न करता है। शरीर वीर्य को उत्पन्न करता है और वीर्य, मन, वचन और काया की हलन–चलन को उत्पन्न करता है। सारी शक्ति का केन्द्र, सारी शक्ति का संचालन, नियन्त्रण और आत्मा की समस्त अभिव्यक्तियां शरीर के द्वारा ही होती है। शरीर हमारी सारी शक्ति का उत्पादक यंत्र है। जहां से ये शक्तियां विभिन्न मार्गो में प्रवाहित होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार आत्मा से शरीर और मन, मस्तिष्क प्रभावित होते हैं, उसी प्रकार शरीर की गतिविधियों से मन और आत्मा भी प्रभावित होते हैं। जिस स्तर का रोग हो उसके अनुरूप उपचार करने से ही स्थायी एवं प्रभावशाली परिणाम शीघ्र प्राप्त होते हैं।

प्राण ऊर्जा का रूपान्तरण जीवन संचालन हेतु आवश्यक –

हमारे शरीर का संचालन पूर्णतया आपसी सहयोग, तालमेल और समन्वय से होता है। शरीर के सभी अंगों और मस्तिष्क का कार्य अलग–अलग होता है। प्रत्येक कार्य के लिये ऊर्जा जरूरी है अतः उसके लिये अलग–अलग प्रकार की विशेष ऊर्जाओं की आवश्यकता होती है, जिसका रूपान्तरण प्राण ऊर्जा से ही होता है। उसके क्षीण होते ही सारी क्रियायें ठप्प हो जाती है। जिस प्रकार चुम्बकीय ऊर्जा को विद्युत तथा विद्युत से चुम्बकीय ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है। विद्युत ऊर्जा का प्रकाश, गर्मी, ठण्डक, वाहनों के चलन आदि रूपों में रूपान्तरण कर उपयोग लिया जा सकता है, उसी प्रकार प्राण ऊर्जा का भी शरीर की विभिन्न प्रक्रियाओं एवं अंगों की आवश्यकतानुसार रूपान्तरण हो सकता है। किसी कारणवश शरीर के किसी भाग में उसकी क्रिया हेतु आवश्यक ऊर्जा नहीं मिलती है। तब संबन्धित भाग/अंग/उपांग/अवयव रोगग्रस्त होने लगता है। परिणामस्वरूप उससे संबंधित सारी गतिविधियां प्रभावित होने लगती हैं। दीर्घकाल तक ऐसी स्थिति बने रहने से रोग संक्रामक और असाध्य बन सकता है।

प्राण ऊर्जा का असंतुलन रोगों का मूल–

शरीर में ऊर्जाओं का प्रवाह जिस मार्ग से होता है उन्हें मेरीडियन कहते हैं। जब शरीर में कोई रोग होता है तो उसका प्रभाव सारे शरीर में चारों तरफ प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से थोड़ा बहुत पड़ता है। जिस प्रकार विद्युत उपकरणों में जब क्षमता से अधिक वोल्टेज पर बिजली प्रवाहित होती है तो उस उपकरण के खराब होने की संभावना रहती है और यदि कम वोल्टेज पर बिजली प्रवाहित हो तो उपकरण पूर्ण क्षमता से कार्य नहीं करते। ठीक उसी प्रकार जब किसी मेरीरियन में प्राण ऊर्जा का प्रवाह आवश्यकता से कम अथवा अधिक हो तो ऊर्जा असंतुलन के कारण उस मेरीडियन की ऊर्जा से संबंधित शरीर के अंग उपांग रोगग्रस्त हो जाते हैं। सारे शरीर में मांसपेशियां, रक्त परिभ्रमण, श्वसन, पाचन, हृदय की धड़कन, नाड़ी की गति, विजातीय तत्वों के विसर्जन आदि प्रभावित होने लगते है। परिणामस्वरूप मानसिक स्तर पर भूख, प्यास निद्रा, थकान, अरूचि, बेचैनी, तनाव, पीड़ा, दर्द, चिड़चिड़ापन, मनोबल में कमी जैसी स्थितियां प्रकट होने लगती है। आत्मिक स्तर पर स्मरण शक्ति का विस्मृत होना, सम्यक् प्रवृत्तियों के प्रति अरूचि अथवा उपेक्षा भाव इन्द्रियों और मन पर नियन्त्रण न रख पाना, स्वयं के लिये आवश्यक प्राथमिकता का ज्ञान

विवेक न रहना तथा उसके अनुरूप आचरण न कर पाने जैसी स्थिति बनने लगती है। स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग में मन नहीं लगता। दूसरी तरफ ऊर्जा के असंतुलन के कारण रक्त, मल, मूत्र आदि अवयवों के रासायनिक तत्वों में परिवर्तन होने लगता है। शरीर का बाह्य संतुलन भी प्रभावित होने से चलने–फिरने, उठने–बैठने में तकलीफ तथा अन्य लक्षण प्रकट होने लगते हैं। कमजोरी अनुभव होने लगती है। इन्द्रियों की क्षमतायें क्षीण होने लगती है। कहने का तात्पर्य यह है कि शरीर के विभिन्न अंगों में प्रवाहित प्राण ऊर्जा का संतुलन शरीर की मुख्य आवश्यकता है। जिसके असंतुलन से न केवल शारीरिक स्तर पर दुष्प्रभाव पड़ता है अपितु मानसिक, भावात्मक और आत्मिक स्तर भी प्रभावित होते हैं। अतः जो उपचार प्राण–ऊर्जा के संतुलन के सिद्धान्त पर आधारित होगा वह अधिक सनातन व्यापक और प्रभावशाली होते हैं। अतः जो उपचार प्राण–ऊर्जा के संतुलन के सिद्धान्त पर आधारित होगा वह अधिक सनातन व्यापक और प्रभावशाली होगा।

प्राण ऊर्जा के संतुलन बिना उपचार अपूर्ण–

अधिकांश चिकित्सा पद्धतियां प्राण ऊर्जा के असंतुलन से पड़ने वाले प्रभावों को अपने–अपने ढंग से समझ, रोग का निदान और उपचार करती है। नाड़ी की गति के आधार पर वात–कफ पित्त को शरीर में स्थिति द्वारा निदान करते हैं। ऐलोपेथिक चिकित्सा मल–मूत्र, रक्त के परीक्षणों तथा ई.सी.जी., सोनोग्राफी, एक्स–रे, सी.टी. केन स्केनिंग आदि के आधार पर रोग का निदान करते हैं। चन्द चिकित्सा पद्धतियां शरीर में विजातिय तत्वों की उपस्थिति को रोगों का एक मात्र कारण मानती है। शारीरिक विजातीय तत्वों को दूर कर शरीर को स्वस्थ बनाने तक ही अपने उपचार का ध्येय मानती है। उपचार करते समयमन व आत्मा के विजातीय तत्वों की तरफ उनका ध्यान नहीं जाता। शरीर जड़ है अतः बाजार से मिलने वाली दवाइयां अन्य खाद्य–पदार्थ और भौतिक उपकरणों की मदद से जड़ ऊर्जा तो मिल सकती है पर प्राण ऊर्जा नहीं। ऐसी चिकित्सा पद्धतियां अधिक से अधिक शरीर को ठीक कर सकती है। मानसिक व आत्मिक रोगों का उपचार तो स्वयं की चेतना से उत्पन्न प्राण ऊर्जाओं से ही संभव हो सकता है। प्रत्यक्ष या परोक्ष हिंसा को प्रोत्साहन देने वाली चिकित्सा प्राण ऊर्जा का असंतुलन ही करती है, अतः रोगी को स्थायी रूप से रोग मुक्त नहीं बन सकती।

उपसंहार–

अतः जितना–जितना हम स्वयम् अथवा अन्य जीवों के सम्पूर्ण प्राणों का अपव्यय अथवा दुरूपयोग करेंगे उतना–उतना आरोग्य से भटक जावेंगे। जो चिकित्सा पद्धतियां प्राण ऊर्जा के संरक्षण में सहयोग देती है, उनकी अभिवृद्धि में सहयोग करती है, वे चाहे प्राणायाम, ध्यान कायोत्सर्ग हो अथवा अन्य पद्धतियां सभी स्तर के रोगों से मुक्ति दिलाने में सक्षम होती है। जो चिकित्सा शरीर में आवश्यकतानुसार प्राण ऊर्जा से प्रवाह को नियन्त्रित कर सकती है वे अत्याधिक प्रभावशाली होती है। प्राण ऊर्जा के संतुलन से न केवल शरीर अपितु मन और भावात्मक स्तर पर भी उपचार होता है। प्रत्येक व्यक्ति असीम शक्ति का स्रोत है। उपचार करते समय अच्छा चिकित्सक मात्र रोगी को जगाने का प्रयास करता है। सभी रोग एक जैसे नहीं होते। सभी ठीक नहीं होते। जिसके अन्दर का तत्व जागृत होगा उस पर प्रभाव पड़ेगा। रोगी को साथ जोड़ना होगा। वह बेहोश है। अज्ञानी है, ना समझ है। सम्पूर्ण ऊर्जा संतुलन का उद्देश्य जो परम तत्व अन्दर है उसको प्रकट करना। समभाव में आना, राग द्वेष से मुक्त हो जाना। स्व में स्थित होना। नर से नारायण और आत्मा को परमात्मा बनाना। यही स्थायी उपचार है। जितना–जितना प्राण ऊर्जा का संतुलन होगा, उसी अनुपात में हम रोग मुक्त होते जावेंगे।

–जोधपुर (राज.)

वेद कालीन ऋषिकाएँ

मनुदेव 'अभय' विद्यावाचस्पति

विश्व में आदि ज्ञान के प्रकाश स्रोत वेद ही है। वेद और विशेषकर ऋग्वेद विश्व का प्रथम ज्ञान–भंडार ग्रंथ माना जाता है। वेद चार हैं और इनमें त्रयी विद्या विद्यमान है। अधुनातन शोध के अनुसार चारों वेदों में कुल मंत्र संख्या २० हजार ४०० है। इसी तरह चारों वेदों में शब्द संख्या प्रायः ७ लाख ६७ हजार है। वेद अपौरुषेय है तथा ऋषिगण मन्त्रद्रष्टा है, मन्त्रस्रष्टा नहीं। पाश्चात्य विद्वानों ने पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर वेदों के अर्थ सायण–भाष्य के आधार पर बहुत भ्रष्ट तथा मूर्खतापूर्ण किये। सायण–भाष्य के आधार पर ही वे वेदों को गड़रिये के गीत कहा करते थे किन्तु आधुनिक युग के वेद–मंत्रद्रष्टा, योगी, महर्षि दयानन्द ने यास्क के निघण्टु तथा निरुक्त के आधार वेदों का भाष्य कर उन्हें आध्यात्मिक तथा भौतिक ज्ञान–विज्ञान का अपार भंडार सिद्ध किया। वेदों के मंत्र–द्रष्टा न केवल पुरुष ही अपितु अनेक ऋषिकाएँ (स्त्रियां) थीं। ईश्वरीय ज्ञान प्राप्ति में स्त्री–पुरुष का कोई भेद नहीं। परमेश्वर की व्यवस्था में किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं।

वैदिक युग में समाज, राष्ट्र और विश्व के विकास के लिए स्त्री–पुरुष को समान स्वतंत्रता निर्विवाद रुप से मान्य थी। माता पिता अपनी संतान को उच्चतम् शिक्षा देकर उन्हें सुयोग्य नागरिक बनाते थे, विशेषतः कन्याओं को ऐसी शिक्षा दी जाती थी कि वे भविष्य में परिवार, समाज और राष्ट्र की उत्प्रेरिका, मार्गदर्शिका तथा संचालिका बन सकें। भारतीय दर्शन की यह विशेषता है कि वह स्त्री–पुरुष शरीर धारी आत्माओं में लिंग भेद नहीं मानता है। प्रत्येक आत्मा को ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार पूर्ण विकास करने की पूर्ण स्वतंत्रता तथा अवसर प्रदान किया जाता है। आत्मा परमात्मा में व्याप्य व्यापक का सम्बन्ध बना हुआ है। इसी वैदिक दर्शन के अनुसार वैदिक युग में स्त्री शिक्षा दो रुपों में दी जाती थी। स्त्री शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् सद्योद्वाहा तथा ब्रह्मवादिनी कहलाती थी। सद्योद्वाहा वे होती थीं जो पारम्परिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश ले लेती थीं। शिक्षा प्राप्ति काल में इन्हें सुयोग्य गृहिणी, सुयोग्य पत्नी और सुयोग्य माता बनने हेतु पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। वर्तमान सन्दर्भ में स्नातक और स्नातकोत्तर शिक्षा क्रम के अनुरुप शिक्षा प्रदान की जाती थी। वैदिक गृहस्थाश्रम अन्य तीन आश्रमों यथा–ब्रह्मचर्याश्रम, वानप्रस्थाश्रम तथा संन्यासाश्रम का मूलाधार था। वैदिक परिवार के पाँच अनुष्ठान (यज्ञ) अनिवार्य थे। ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेव यज्ञ तथा अतिथि यज्ञ प्रत्येक याज्ञिक अपनी धर्मपत्नी के साथ सम्पन्न करता था। इसलिए स्त्रियों को शास्त्रों का ज्ञान और मन्त्रों का सस्वर उच्चारण जानना अपेक्षित था। साथ ही शिशु–पालन, संस्कार ज्ञान शरीर, विज्ञान पाक शास्त्र, साहित्य–चर्चा, चित्र–लेखन, गायन–वादन–नृत्य शिक्षा, सभाओं में सम्भाषण देने की क्षमता, गोष्ठियों का आयोजन आदि करने की योग्यता अपेक्षित थी। वैदिक काल में अनेक विदुषी–स्त्रियों के उल्लेखनीय नाम हैं। इन्द्राणी, शची, इन्द्रमाता देवजानि, वसुक्र ऋषि की पत्नी इन्द्रस्नुषा, सूर्य की पुत्री

सावित्री, ब्रह्मा की पुत्री जुहू, मन की पत्नी श्रद्धा, प्रजापति की पुत्री दक्षिणा, सूर्य की पत्नी पृश्नि, शिखण्डिनी–काश्यपी–उर्वशी जैसी अप्सराएँ तथा लक्ष्मी, वाणी, जैसी देवियाँ इस वर्ग की स्त्रियाँ हैं जो पुरुषों की सहधर्मिणी और सहकर्मिणी रही हैं।

दूसरे प्रकार की स्त्रियाँ ब्रह्मवादिनी हैं जो वेद–शास्त्र, ज्ञान विज्ञान, दर्शन, ज्योतिष आदि विद्याओं में उच्च शिक्षा प्राप्ति तक ब्रह्मचारिणी रहती थीं। इनमें से अधिकांश स्त्रियाँ आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर तपश्चर्या द्वारा जीवन यापन करतीं थीं। इस प्रकार उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्रियों को ब्रह्मवादिनी कहा जाता था। वर्तमान भाषा में इन्हें पी० एच० डी० या डी० लिट् उपाधि प्राप्त महिला कहा जायेगा। किसी कवि ने ठीक ही लिखा है–

गोधा, घोषा, विश्ववारा, आपालोपनिषन्निवित्।
ब्रह्मजाया, जुहूर्नाभागस्व्यस्य स्वसादितिः।।
इन्द्रणीचन्द्रमाता चे सरमा रोमशोर्वशी।
लोपामुद्राश्च नद्यश्च यमी नारी च शश्वती।।
श्री लक्षिसार्पराज्ञीवाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा।
रामी सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्यः ईरितः।
सिकतानि वावरी इन्द्रस्नुषा वसुक्रपत्नी पृश्नियोजा।
अप्सरसौ शिखण्डिन्यौ काश्यप्यौ पौलोमि च शची इति।।

ऋग्वेद : परिभाषा खंडः पृष्ठ २६ । सालवलेकर। स्वाध्याय मण्डल पूना।

पं सातवलेकर द्वारा सम्पादित ऋषि–सूची। पृष्ठ ५७ के अनुसार ३३ स्त्रियाँ ब्रह्मवादिनी कही जाती हैं। यथा–

गोधा, घोषा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषा, निविद्, जुहू, अगस्त्यस्वसा, इन्द्राणी, इन्द्रमाता, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा, नदी, यमी, शश्वती, श्री, लाक्ष्या, गार्गी, सार्पराज्ञी, वाक्, श्रद्धा, मेधा, दक्षिणा, रात्रि, सूर्या सावित्री, सिकता, नीबावरी, इन्द्रस्नुषा, पृश्नि, शिखण्डिनी–काश्यपी, शची, पौलोमी ये विदुषी ऋषिकाओं के नाम प्राप्त हैं।

अनेक विद्वानों के मतानुसार उपर्युक्त विदुषी स्त्रियों में से अगस्त्य स्वसा, अदिति, इन्द्रस्नुषा, उर्वर्शी, गोधा, नदीं, यमी, वैवस्वती शश्वती आंगिरसी, सरमा देवशुनी और सूर्या सावित्री को ऋषिका पदवी प्रदान की गई है। ध्यातव्य है कि मंत्रो के अर्थ का प्रकाश करने वाली स्त्री ऋषिका कहलाती है। मंत्र का गूढ़ार्थ प्रकट करना इनका, मुख्य कार्य था।

कालान्तर में लोक व्यवहार में इन्द्राणी, शची, लक्ष्मी, सरस्वती, वाणी, उर्वशी यमी जैसे संज्ञावाचक, व्यक्तित्व प्रचलित हो गए।

इस प्रकार वैदिक काल में अनेक ऋषिकाएँ मन्त्रद्रष्ट्री हो चुकी हैं अतः इन तथ्यों के आधार पर वैदिक काल में स्त्री–पुरुषों का समान और प्रतिष्ठित स्थान था। वेद कालीन नारी–समाज कितना स्वतंत्र और समुन्नत था, इसका दिग्दर्शन ऋषिकाओं के आख्यानों में उपलब्ध है। यथार्थ में वैदिक समाज में स्त्री–पुरुष प्रत्येक क्षेत्र में समानकर्म और समानधर्मा थे।

१. अगस्त्य स्वसा – यह ऋषिका सुबंधु/श्रुत बंधु, बंधु और विप्रबंधु गोपायनों की माता है। राजनीति के सिद्धान्तों का निरुपण करते हुए यह ऋषिका का कथन है– महापुरुषों के समक्ष उपहार लेकर जाओ। राजा ऐसे ही व्यक्ति को बनाओ जो संग्राम में रथ को सम्हाल कर चला सके, शारीरिक बल से शत्रु को परास्त कर सके, जिसका शिक्षा मंत्री विवेकी, वित्तमंत्री धनवान्, रक्षामंत्री कल्पक और सेनाध्यक्ष शत्रु संहारक हो। सातों नदियों के क्षेत्र में रहने वाली समृद्ध प्रजा को न्याय और रक्षा का विशेष प्रबंध कर लोभी व्यापारियों को नियंत्रित कर राजा राष्ट्र का माता के समान निर्माण करे और पिता के समान पालन करे। ऐसे सुबंधु राजा का राज्य निरन्तर वृद्धि करता है। श्रुत बंधु मानसी और विप्रबंधु चिकित्सकीय उन्नति करें तथा बंधु सबसे समान व्यवहार करें।

२. अदिति दाक्षायणी– प्रचेतस प्रजापति और उसकी पत्नी, असिक्नी से उत्पन्न कन्या कश्यप प्रजापति तथा मित्र–वरूण अर्यमा और इन्द्र की पूज्या माता है। इसके आठ पुत्र 'अष्टवसु' कहे जाते हैं। एक ऐसी मान्यता है कि अदिति के

मन में सात पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा थी, वह पूर्ण हो गयी किन्तु... जब वह ८ वीं संतान की माता बनी, तब उसने अपना गर्भपात करा लिया। अदिति को देवों की कृपा से उच्च कोटि की आध्यात्मिकता प्राप्त हुई थी। वह ऋषिका कोटि में आ गई।

३. अपाला– माता अनुसूया तथा अत्रि ऋषि की संतान होने के कारण इन्हें 'अपाला आत्रेयी' भी कहा जाता है। यह उच्च कोटि की ब्रह्मवादिनी थी। दैववश विवाहोपरान्त इन्हें कुष्ठ रोग हो जाने के कारण इनके पति ने इनको त्याग दिया था। पितृगृह में रहकर इन्होंने इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए घोर तपस्या की थी। तत्कालीन आयुर्वेदिक औषधियों द्वारा इनका कुष्ठरोग दूर हो गया। आयुर्वेद की विशेषज्ञा, चिकित्सिका के रूप में इनकी विशिष्ट ख्याति है। कहा जाता है कि पंड़त भूमि को कृषि योग्य बनाने की विद्या की प्रकाशिका के रूप में इनकी बड़ी ख्याति रही।

४. इन्द्र माता देवयामी– इन्हें जिन वेदमन्त्रों को ज्ञानाभ्यास हुआ था, उनके द्वारा इन्होंने राजा को राजनीति की शिक्षा दी इस कारण इन्हें राजनीति विशारदा कहा जाता है। इनके मतानुसार प्रजा राजा के आश्रय में ही रहती है। यह प्रजा द्वारा निर्वाचित होता है। शत्रुओं का नाश करना, मध्यस्थ शासक को सहायता देना, सेना तथा राज्य–परिषद को अपने वश में रखना, प्रजा का अपनी सन्तानवत् पालन पोषण करना राजा का प्रथम कर्तव्य है। वह प्रजारंजक है।

५. इन्द्र स्नुषा वसुक्रपत्नी– इन्होंने प्राणशक्ति, आत्मा–विज्ञान के साथ ही साथ सफल दाम्पत्य जीवन के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन किया है। इनके मतानुसार शरीर और आत्मा ये दो पृथक्–पृथक् वस्तुएँ हैं। शरीर को जल और अन्न पुष्ट करता है, पुष्ट शरीर में पुष्ट आत्मा विद्यमान रहता है। स्वस्थ शरीर, पुष्ट प्राणशक्ति तथा बलिष्ठ आत्मा से व्यक्ति अनन्त विद्याओं को प्राप्त करता तथा अक्षय कीर्ति प्राप्त करता है।

दाम्पत्य जीवन की सफलता के संबंध में इस ऋषिका ने स्पष्ट कहा है– वधू वही भाग्यशालिनी है, जो पति का प्रेम पाती है। साथ ही पति भी ऐसा हो जो वीर्यवान्, बलिष्ठ, कर्मठ और संघर्षशील हो।

६. इन्द्राणी– यह देवराज इन्द्र की पत्नी है। ये ऋग्वेद के अनेक मंत्रों की द्रष्ट्री हैं। इन्हें जयन्त नामक एक ही पुत्र था। इन्द्राणी अनेक बार अपने पति को उपदेश देते हुए कहा करती थी–"यज्ञकर्ता दाढ़ी मूँछ वाला युवा ही अभिनन्दनीय है। हे इन्द्र! निराश होकर मत बैठिये प्राणवान होकर वृषाकपि को परास्त कीजिए। नवीन चरू को लीजिए और उत्साही बनिये। काव्यालंकार के अनुसार इन्द्राणी आत्मा है सौत माया है और पति ब्रह्म है। जब आत्मा अविद्या को उखाड़कर औषधि रूपी विद्या प्राप्त कर लेती है, तब आत्मा परमात्मा के उस महान् आनन्द का रसास्वादन करने लगती है। यह लौकिक तथा पारलौकिक विद्याओं की प्रसारिका ऋषिका है।

७. उर्वशी– इसे एक अप्सरा माना गया है। यह ऋग्वेद की ब्रह्मवादिनी विदुषी हैं। दन्त कथाओं में उर्वशी–पुरूरवा का संवाद बहुत चर्चित है। इसकी आठ सन्तानें थीं। इस दन्तकथा का एक ही निष्कर्ष है कि स्त्री कभी भी अश्लीलता सहन नहीं करती। अन्यथा मोह–भंग होने में समय नहीं लगता। अप्रत्यक्ष रूप से नारी मर्यादित रहने में ही अपनी शोभा मानती है।

८. गार्गी वाचक्नवी–वचक्नु ऋषि की कन्या होने के कारण इसे गार्गी वाचक्नवी कहते हैं। यह अत्यन्त ही ब्रह्मनिष्ठ थी। यह परमहंस के समान जीवन व्यतीत करती थी। देवराज जनक की सभा में इसका महर्षि याज्ञवल्क्य से ब्रह्म के स्वरूप के संबंध में बड़ा गहरा विवाद हुआ था, जिसमें इसने आत्मा–परमात्मा के मध्य अन्तर पर उच्च कोटि का निष्कर्ष निकाला था। बृहदारण्यक उपनिषद् के आधार पर कहा जा

सकता है कि यह ब्रह्म संबंधी जिज्ञासा को शांत करने वाली परम विदुषी, तर्क शिरोमणि, सर्वशास्त्र पारंगता तथा प्रतिभा सम्पन्न गार्गी वेदज्ञों में श्रेष्ठ मानी जाती थी।

९. गोधा– मंत्रद्रष्ट्री, ब्रह्मवादिनी इस ऋषिका का कथन है कि 'देवगण किसी की हिंसा न करें। वे अव्यवस्था न फैलावें और सहयोगियों सहित अनुशासन बनाये रखें। समाज में सहयोग और अनुशासन की भावना का प्रकाशन इसी ऋषिका की देन है।

१०. घोषा काक्षीवती– यह कक्षीवत् ऋषि की मंत्रद्रष्ट्री पुत्री थी दुर्दैववश इसे बाल्यकाल से ही कुष्ठ रोग हो गया। इस कारण यह आजीवन अविवाहिता रही तथा इसे अपना सम्पूर्ण जीवन अपने पिताश्री के घर पर ही व्यतीत करना पड़ा। कहा जाता है कि इस विदुषी कन्या की भेंट अश्विनी कुमारों से हो गई और उनके निदान के पश्चात् कुशल उपचार से उसका कुष्ठ रोग दूर हो गया। पूर्ण स्वस्थ होते ही इस कन्या का विवाह हो गया। विवाहोपरान्त इससे घोष और सुहस्त्य नामक दो पुत्र हुए। इन दोनों पुत्रों को अश्विनी कुमारों ने युद्ध की शिक्षा दी। ये मल्लविद्या में पारङ्गत हुए।

इस ऋषिका ने विवाह–संस्था का गहराई से अध्ययन किया। पुत्री, पत्नी और माता के रूप में स्त्री के कर्त्तव्य, धर्म, समाज, राजनीति, और परिवार में स्त्री का कथन संबंधी व्यवस्थाओं पर इसने गहन अध्ययन कर उचित व्यवस्था दी। गृहस्थाश्रम में स्त्री के कर्त्तव्य, विवाह की आवश्यकता, विवाह के प्रकार तथा दहेज में स्त्री–धन पर अधिकारों के गूढ़ विचारों पर इस ऋषिका ने महान् अनुसंधान किया है। आश्चर्य की यह बात है कि इस ऋषिका ने अपना विवाह उस समय किया, जब यौवनावस्था समाप्त हो रही थी।

११. जुहू– इन्हें ब्रह्मजाया भी कहा जाता है। यह ऊर्ध्वनाभा की पुत्री थीं। यह ब्रह्मर्षि बृहस्पति की धर्मपत्नी थीं। इन्होंने वैदिक कर्मकाण्ड का बहुत ही तार्किक दृष्टि से महत्व और प्रतिपादन किया है। इन्हें बुध नामक एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ था। दन्त कथा है कि एक बार क्षत्रिय पुत्र चन्द्रमा ने इस ऋषिका का अपहरण कर लिया था। देवताओं द्वारा घोर विरोध करने पर इन्हें पुनः इनके पति को सौंप दिया गया। यज्ञ के प्रभाव से चन्द्रमा राजा से यह प्रतिज्ञा कराई गई कि 'राजा विद्वानों' की सम्पत्ति वाणी को भी नहीं दबायेगा। कुछ विद्वानों के मतानुसार 'वाणी–स्वातंत्र्य' के मन्त्र की व्याख्या और उसका प्रतिपादन इसी ऋषिका ने किया था।

१२. दक्षिणा प्राजापत्या– यह अपनी माता रूचि की बिल्कुल अनुकृति थी। इसका विवाह 'यज्ञ' नामक एक श्रेष्ठ देव से हुआ था। विवाहोपरान्त इन्होंने व्दादशपुत्रों को जन्म दिया जिनमें तुषित सबसे बड़ा था। इस विदुषी ने दान की महिमा, दान के प्रकार, सात्विक–राजस–तामस दान की व्याख्या, उत्तम–मध्यम–निष्कृष्ट दान, दान में सुपात्र–कुपात्र पर विचार, सकाम दान की निष्कृटता तथा निष्काम दान की महिमा आदि आख्यान बहुत ही बुद्धिमत्ता से किये हैं।

१३. दिति दाक्षायणी– इनके पिता का नाम प्राचेतस दक्ष तथा माता का नाम आसिक्नी था। इनका विवाह ऋषि कश्यप से हुआ। कुछ लोग इन्हें दैत्यों की माता भी कहते हैं। इनका देवमाता अदिति से वैचारिक मतभेद आजीवन बना रहा। इन दोनों के वैचारिक मतभेद यह थे कि स्त्रियों की रक्षा राजा की रानी को करना चाहिए। स्त्रियों के वादों का निराकरण और न्याय स्त्री ही करे इस सिद्धान्त की परिपोषक अदिति थी, जब कि दिति दाक्षायणी इसके विपरीत रहीं।

१४. पृश्नि : अजा – यह सविता नामक आदित्य की पत्नी तथा मरूतों की माता थीं। कुछ विद्वान् इन्हें देवकी के रूप में मानकर कृष्ण की माता कहते हैं। किन्तु विचारणीय यह है कि देवकी और कृष्ण तो द्वापर युग में उत्पन्न हुए थे। इस ऋषिका ने यह प्रतिपादित किया–'शब्द ही ब्रह्म

है।' इसके साथ ही इन्होंने घोषणा की –"व्यवहार में जिसका खण्डन या मण्डन हो वैसा ही करना चाहिए। दृढ़ न्याय को प्रस्थापित कर उसका प्रचार होना चाहिए।"

१५. ऋषिका 'नदी'– इस ऋषिका द्वारा नदियों (जल) का महत्व प्रतिपादित किया गया है। कहा जाता है कि इस ऋषिका ने कहा–राष्ट्र की नदियाँ ज्ञानदायिनी और श्रमशीला नारी के रूप में प्रकाशिका हैं। आर्यावर्त्त की पूर्व की सप्तनद, मध्य की सप्त नद और सप्तनद–पश्चिम नामक २१ नदियों के संबंध में इन्होंने उनका महत्व कहा। एक कथा के अनुसार (अ) गंगा, यमुना, सरस्वती, शतद्रु, विपाशा, दृषद्वती, अपाया; (ब) गौरी, अनितभा, कुभा, क्रमु, सिंधु, असिक्नी, सरयू; (स) तृष्टामा श्वेती, सुवास्तु रसा, गोमती, विपाटा, वितस्ता। ये सभी नदियां जलदायिनी, अन्नपूर्णा और प्राणदायिनी है। इनका उपयोग किया जाय।

१६. मेधा ब्रह्मवादिनी– यह दक्ष प्रजापति की कन्या थीं। इनका विवाह 'धर्म' नामक ऋषि से हुआ तथा इन्हें एक मात्र पुत्र 'स्मृति' हुआ। इस ऋषिका ने आत्म विकास के लिए मेधावी होने की महत्वाकांक्षा रखने का उपदेश दिया। इन्होंने मेधा सूक्त (ऋक) के आधार पर कहा–दैवी एवं मानुषी मेधा हेतु अनुष्ठान किया जाय। जिससे शरीर विचक्षण बने, वाणी मीठी हो, सदैव तेजस्वी, शोभायुक्त युवा रूप बना रहे तथा सदैव मेधावी बना रहे। इसी मेधा की देवगण और पितृगण उपासना करते हैं। मनुष्य को सुमन, सुप्रतीक, सुश्रद्धा, सत्यमति और सुवेश धारण की इच्छा करना चाहिए। मेधा और श्रद्धा से आत्म विकास सम्भव है। ये दोनों आवश्यक तत्व हैं। इनके धारण से ही मनुष्य में श्री और शोभा की वृद्धि होती है।

१७. यमी वैवस्वतीं– इस ऋषिका द्वारा सगोत्र विवाह का निषेध तथा नियोग प्रथा को सामाजिक स्वीकृति का रूप प्रदान करने के सिद्धान्त का तार्किक ढंग से प्रतिपादन किया गया। कहा जाता है कि यमी यम से रतिदान का अनुरोध करती है। यम दुर्बल पुरूष है, अतः यमी को दूसरे वीर्यवान पुरूष के सहवास से सन्तान उत्पन्न करने की अनुमति देता है। इस प्रकार नियोग प्रथा के प्रचलन की समर्थक 'यमी' को माना जाता है। यह एक सामाजिक प्रथा है।

१८. रात्रि भारद्वाजी– इस ऋषिका ने ऋग्वेद के खिल सूक्त तथा रात्रि सूक्त की व्याख्या इस प्रकार की है– रात्रि को उषा की छोटी बहन तथा आकाश की पुत्री कहा गया है। रात्रि अपने तारकामय नेत्रों से अंधकार को भगाती है और प्रकाश फैलाती है। इसके आने पर पशु–पक्षी और मनुष्य अपने–अपने नीड़ निवासों को लौट आते हैं। भेड़िये, चोर और निशाचरों से पथिकों को सुरक्षित रखने की प्रार्थना है। यही इसका उज्जवल पक्ष है।

१९. रोमशा ब्रह्मवादिनी– सामान्यतः रोमशा का अर्थ बाल वाली है। शास्त्रों में कहीं–कहीं रोमशा–भावयव्य का संवाद पाया जाता है। रोमशा राजा भावयव्य की पत्नी है। रोमशा ने अपने पति से नारी के समानाधिकार देने की चर्चा की है। उसका कथन है– यदि आप (पुरुष) न्यायाचरण के अधिकारी हैं तो मैं (स्त्री) भी न्यायाचरण की अधिकारिणी हूँ। इस प्रकार वह समाज में समान सन्तुलन बनाने की चर्चा करती है।

२०. लोपामुद्रा– यह विदर्भ (महाराष्ट्र) के राजा भीम की पुत्री तथा अगस्त्य की धर्मपत्नी थी। इसे वैदर्भी कहा जाता है। यह ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ११६ वें सूक्त की प्रकाशिका थी। यह स्वभाव से बहुत ही उग्र किंतु व्यवहार कुशल थी। विवाह के पश्चात् पति अगस्त्य ने इसे राजसी वेश त्यागकर बल्कल और चर्म धारण करने के लिये कहा। पति की आज्ञा का पालन कर यह दोनों गंगा के किनारे 'तप' में लग गये। तप से निवृत्ति के पश्चात् फिर गृहस्थ कर्म में व्यस्त हो गये। कुछ समय पश्चात् इन्हें एक पुत्र–रत्न प्राप्त हुआ। यह अति बलवान्

था। माता ने इसका नाम दृढ़स्यु रखा। यह बालक अपने पिता द्वारा किये जाने वाले यज्ञ के लिए 'समिधा' बटोरने में चतुर होने के कारण इसके पिता इसे 'इध्मवाह' कहा करते थे। यह बहुत ही सुसंस्कारी था।

एक कथा के अनुसार महर्षि अगस्त्य के आश्रम में अतिथियों का प्रतिदिन आगम होता था। लोपामुद्रा वैदर्भी अक्षय स्थाली की सहायता से 'अतिथि–यज्ञ' बड़ी निपुणता से करती थी। इस प्रकार इन दोनों का जीवन अति संयमी तथा सफल गृहस्थ था। लोपामुद्रा ने 'स्वयंवर विवाह' को अति प्रश्रय देकर वन कन्याओं का मार्ग प्रशस्त किया था।

२१. वाक् आम्भृणी– यह अत्यन्त ही तेजस्वी विचारों वाली ऋषिका थी। इसका कथन था– जो ज्ञान देवताओं और मानवों को अप्राप्य है, उसे मैं अपने तप के बल पर सभी को दे सकती हूँ। कोई भी व्यक्ति ज्ञान के द्वारा श्रेष्ठ बन सकता है। वह अपने श्रम और पुरूषार्थ के द्वारा ऋषि तथा प्रचेता बन सकता है। ब्रह्मद्वेष्टा व्यक्ति को कभी भी प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। नास्तिको वेदनिन्दकः।

२२. विश्ववारा आत्रेयी – वैदिक अग्निहोत्र कर्म की यह विशेषज्ञा ऋषिका है। इसने साधारण मनुष्यों को सामान्य ज्ञान, प्रकाश, विद्वानों के लिए सत्य का उपदेश तथा धर्मिष्ठों के लिए व्यवहार ज्ञान ग्रहण करने का उपदेश दिया है।

२३. शची पौलोमी– यह ऋग्वेद के १०/१५६ के १ से ६ मंत्रों की द्रष्ट्री हैं। यह पुलोमन राजा की पुत्री, देवराज इन्द्र की पत्नी तथा जयन्त की माता थी। इसने गृहाश्रम की सूक्ष्म तत्वों की ओर संकेत करते हुए कहा है– नारी की स्वाभाविक इच्छा रहती है कि उसे सूर्य के समान तेजस्वी पति मिले, वह स्वयं शीर्ष के समान उच्च बनी रहे। उसके पुत्र शत्रुहन्ता हों उसकी पुत्री दूर देश मैं विवाहित हो यह भावनाएं उच्च कोटि की बनी रहे, यही मान्यता ऋषिका की है। विवाहित नारी के दाम्पत्य सुख में 'सौत' का प्रवेश न होने पाये। वह सभी आसुरी तत्वों पर विजय प्राप्त कर अपना गृहस्थाश्रम निष्कंटक बनाये। कहते हैं इसने अपने पति इन्द्र के साथ उसके शत्रु नहुष के साथ हुए युद्ध में जाकर पति को सहयोग दिया था। इस प्रकार शची नारी जाति की उच्च आकांक्षाओं की प्रतीक है।

२४. शश्वती आंगिरसी– यह महान दानवीर आसंग ऋषि की पत्नी थी। इसने अपने गंभीर ज्ञान और धैर्य के बल पर आसंग को पुरूषत्व प्राप्त कराया था। यह निर्वीर्य पुरुष को वीर्यवान् बनाने वाली श्रेष्ठ वैद्या और ब्रह्मवादिनी ऋषिका है। परिवार का हर सदस्य निरोगी और दीर्घायु रहे।

२५. शशियशी– यह ऋषिका ऋक् ५/६१/५,६,७ मंत्रों की द्रष्ट्री थी। तरन्त राजा की पत्नी होने के कारण इसे 'तरंत महिषी' भी कहा जाता है। शशी यशी ने उक्त सूक्तों में वीर और धनवान् पुरूष से विवाह करने, पुरूष को संकटों से उबारने तथा संतान प्राप्ति में सहयोग करने को स्त्री–धर्म निरूपित किया है।

२६. शिखण्डिनी और काश्यपी अप्सराएँ– ये दोनों अप्सराएँ हैं। इन्होंने उपासकों से प्रार्थना की है कि वे आकर यज्ञवेदी पर बैठें और परमात्मा के गुणों का गान करें। परमात्मा सर्वज्ञाता, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापी है। परमात्मा से प्रार्थना करें कि वह मित्र के समान हमें सन्मार्ग दिखाये तथा हमारे पापों को दूर करे।

२७. श्रद्धा कामायनी– यह ऋग्वेद के श्रद्धा सूक्त की प्रकाशिका है। यह वैवस्वत मनु की पत्नी तथा 'मानव' की माता है। श्रद्धा सूक्त में कहा गया है कि "श्रद्धा बुद्धि से ही अग्नि जलाई जाती है और श्रद्धा से यज्ञ में आहुतियाँ दी जाती हैं। हम श्रद्धा सहित परमात्मा की वाणी को शिरोधार्य करें। हमारा उत्थान दानशील पुरूषों को प्रिय लगे। हमारा यही उत्थान बलवान, दानशील और विजयी पुरूषों को विश्वसनीय

और श्रद्धास्पद बनाये। श्रद्धा से ही सत्य धारण और "ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। इसलिए हम प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल श्रद्धा का आह्वान करते हैं कि, हे श्रद्धा ! तू हमें श्रद्धा धारण करा दें।" श्रद्धा का आधार सत्य है।

हिन्दी के महाकवि जयशंकर प्रसाद का 'कामायनी' महाकाव्य कामायनी रूपी इसी श्रद्धा का गायक है। जीवन की चेतना नारी, मानव जीवन की मार्गदर्शिका है।" यही श्रद्धा देवी का सन्देश है।

२८. श्रीः लक्ष्मी– यह भृगु ऋषि की कन्या, धर्म प्रजापति की पत्नी, धातृ विधातृ की भगिनी, तथा आनन्द, कर्दम, श्रीद और चिक्लीत की माता थीं। ये श्रीसूक्त के मंत्रों की द्रष्ट्री थीं। इस सूक्त में सुवर्ण वर्णा लक्ष्मी के स्वरूप का वर्णन है यह स्त्री जाति की कामनाओं का प्रकाशन है। स्त्रियाँ धन, धान्य, पशु, आरोग्य, पुत्र–पौत्र, दीर्घायु, सौन्दर्य और सौभाग्य की कामना करती हैं। लक्ष्मी (श्री देवी) कीर्ति और समृद्धि की प्रतीक है। श्री सूक्त में धन, रयि और श्री का सुन्दर वर्णन है।

२९. सरमा देवशुनी– इन्द्र की इसी पणियों (कृपण लोगों) के धन को ढूंढने के लिए इन्द्र ने सरमा को गुप्तचरी बनाकर उनके निवास स्थानों पर भेजा था। पणियों ने ऋत्विकों की गाये चुराकर रसा नदी के तट पर कंदरा में छिपा दिया था। सरमा ने पता लगा लिया, तो पणियों ने उसे भी कैद कर लिया। सरमा–पणियों में जो संवाद हुआ, वह बहुत महत्वपूर्ण है। इन्द्र ने शक्ति चातुर्य से सरमा और गोधन को छुड़ा लिया। "इस संबंध में ऋग्वेद के सरमा मंत्र हैं– २, ४, ६, ८, १०, ११ तथा पणियों के मन्त्र ३, ५, ७, ९। इनमें दूत कर्म के विचार भी सन्निहित हैं। राजनीति विज्ञान में दूत (दौत्य) कर्म की गहन चर्चा की गई है।

३०. सार्पराज्ञी– सार्पराज्ञी १० वें मण्डल के १८९ वें सूक्त की प्रकाशिका हैं। इसमें द्युलोक में स्थित सूर्य की दैनिक, पाक्षिक और मासिक गति का वर्णन है। परिणाम स्वरूप रात–दिन, कृष्ण–शुक्ल पक्ष और मास का निरूण होता है। अतः सार्पराज्ञी ने काल–गणना का आधार सूर्य की गति माना है।

३१. सिकता निवारी– यह ऋषिका ऋग्वेद९/८६/११-२० के मंत्रों की द्रष्ट्री हैं। इनकी मान्यता है कि मानसिक उपासना परमात्मा की प्राप्ति का मुख्य साधन हैं। सांसारिक कर्मों से मुक्त हो मनुष्य ज्ञान से चित्त वृत्तियों को जब ईश्वर की ओर मोड़ देता है, तब परमात्मा के साथ उसकी मैत्री हो जाती है। यह ऋषिका ध्यान–धारणा की आध्यात्मिक साधन की द्रष्ट्री मानी जाती है।

३२. सूर्या सावित्री – सूर्यपुत्री और अश्विनों की माता सावित्री के विवाह संबंधी ऋचाओं में विवाह के सामाजिक परिप्रेक्ष का निदर्शन है। इसमें पति–पत्नी के अनिवार्य कर्त्तव्यो का ज्ञान कराया गया है। वधू को महत्व देते हुए कहा गया है कि सास–ससुर, ननद–देवर तथा परिजन वधू को घर की संरक्षिका समझें। विवाह–पद्धति का पूर्ण विवेचन सूर्या ने ही किया है।

३३. निविद ब्रह्मवादिनी– यह आयुर्विद्या की महान् विदुषी ऋषिका थी। इन्हें ऐसी विद्या प्राप्त थी, जिससे वे अश्वरथ से आकाश मार्ग में संचरण कर सकती थीं।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वेद कालीन नारी–समाज कितना स्वतंत्र और समुन्नत था। यह ऋषिकाओं के आख्यानों से स्वतः सिद्ध होता है कि वेद कालीन महिलाएं अति उच्च कोटि की विदुषी, दार्शनिक तथा जीवन के गूढ़ रहस्यों को जानने वाली थी। इतना ही नहीं, वेद काल में अनेक देवियाँ, नारी जाति की स्वतंत्रता की पोषक थीं।

–इन्दौर (म.प्र.)

क्या पुत्र और पुत्री के समस्त अधिकार शास्त्र सम्मत हैं ?

डा० माधुरी रानी 'तर्केप्सुका'

तैत्तिरीयोपनिषद् में शिक्षा की व्याख्या करते हुए कहा गया है– शब्दों की उत्पत्ति वर्णों से होती है और वर्णों के ज्ञान के बाद स्वर यानी उच्चारण का ज्ञान होना आवश्यक है। वर्ण तथा स्वर ज्ञान के पश्चात् मात्रा का ज्ञान कराया जाता है। वर्ण, स्वर और मात्रा–ज्ञान के अनन्तर बलाबल का ज्ञान भी आवश्यक है। लोक में भी यही परम्परा देखी जाती है–बालक को सर्वप्रथम 'अ' से लेकर 'ह' पर्यन्त एक–एक वर्ण का अभ्यास कराया जाता है। समस्त वर्णों का जब भली–भाँति बोध हो जाता है तब क, का, कि, की आदि मात्राओं का परिज्ञान कराया जाता है और उनका उच्चारण सिखाया जाता है। संस्कृत भाषा के ज्ञान में मात्राओं का परिज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक वर्ण का अपना–अपना अर्थ होता है। जैसे–'अ' का अपना अर्थ है तो 'आ' का अपना पृथक् अर्थ होता है। यदि 'रामः' कहने से एकवचन और पुल्लिंग का बोध होता है तो 'रमा' कहने से एकवचन और स्त्रीत्व का परिचय मिलता है। इसी प्रकार 'रामौ' से द्विवचन और 'रामाः' बहुवचन का बोधक है। वर्णों के इसी माहात्म्य को भाषा शास्त्र के निबन्धक आचार्य पतञ्जलि मुनि ने –*'एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग् भवतीति'* कहकर दिग्दर्शन कराया है।

शब्द संरचना की इस श्रृंखला को जब हम सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखते हैं तो पुत्र और पुत्री दोनों शब्दों को समानार्थक पाते हैं। संस्कृत शब्द सागर के कोशकार श्री अमरसिंह ने 'पुत्र' और 'पुत्री' के पर्यायवाची पाँच शब्दों को माना है। वे लिखते हैं– *"आत्मजस्तनयः सूनुः सुतः पुत्रः स्त्रियां त्वमी आहुर्दुहितरं सर्वे"* अर्थात् (१) आत्मज (२) तनय (३) सूनु (४) सुत और (५) पुत्र ये पाँच शब्द पुत्र के समानार्थक हैं और स्त्रीलिङ्ग में यही सारे शब्द पुत्री के पर्यायवाची माने गये हैं। संसार के सभी शब्द किसी न किसी अर्थ विशेष पर आधारित होते हैं चाहे वह पर्यायवाची ही क्यों न हों। प्रस्तुत है इन सभी शब्दों के प्रवृत्ति निमित्त पर क्रमशः विचार–

१. आत्मज/आत्मजा– अपनी आत्मा से स्नेहिल भावनाओं से जो उत्पन्न हो (आत्मनः देहात् जातः) अपने शरीर का ही जो भाग हो, अंश हो उस सन्तान को आत्मज या आत्मजा कहते हैं।

२. तनय/तनया– जो जहाँ रहे अपने कुल=वंश का विस्तार करे (तनोति कुलम्)। यह कार्य अपने–अपने स्थानों पर रहते दोनों ही करते हैं इसलिये सन्तान को तनय अथवा तनया कहा जाता है।

३. सूनु/सूनू– दो प्राणियों द्वारा बड़े ही आत्मीय भावनाओं से उत्पन्न किया जाता है। (षूङ् प्राणिगर्भविमोचने–सूयते इति) माता–पिता के रक्त से सिञ्चित होती है। अतः सूनु और कन्या को सूनू कहा जाता है।

४. सुत/सुता– माता–पिता को सत्कर्म की ओर प्रवृत्त कराती है (षू प्रेरणे)। ये सारे अर्थ इन शब्दों द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है और इनसे भी अधिक महत्व पूर्ण अर्थ का प्रतिपादन पुत्र या पुत्री शब्द से किया जाता है।

५. पुत्र/पुत्री– इस शब्द की व्युत्पत्ति हमें तीन प्रकार से प्राप्त होती है– (१) पुनातीति पुत्रः– जो अपने को या दूसरे को पवित्र करता है (पूञ् पवने)। (२) पुन्नाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः (पुत्+त्रैङ् पालने) पुत् नामक नरक से जो अपने माता–पिता की रक्षा करता है उसे पुत्र या पुत्री कहा जाता है यानी नरकत्राता। निरूक्तकार यास्कमुनि भी यही कहते हैं– *पुन्नरकं ततस्त्रायते इति*। व्यास ने भी इसे समर्थन प्रदान किया है–

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा।।

(म.भा. १/७४/३७)

और तृतीय व्युत्पत्ति है– (३) पितॄन् पातीति (पा रक्षणे) माता–पिता की रक्षा करने वाला। द्वितीय तथा तृतीय प्रकार की व्युत्पत्ति का समर्थन हमें रामायण से प्राप्त होता है–

पुन्नाम्नो नरकात् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः पितॄन् यः पाति सर्वतः।।

(रामायण २/१०७/१२)

इस प्रकार इन सब शब्दों का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ स्वतः पुकार–पुकार कर कह रहा है कि जैसे एक माता पिता की बालक सन्तान यदि आत्मज है तो कन्या आत्मजा है। यदि एक तनय है तो दूसरी तनया कहलायेगी। एक सूनु है तो दूसरी सुनू है, एक सुत है तो दूसरी सुता है। ठीक इसी प्रकार एक पुत्र है तो दूसरी सन्तान पुत्री है। इन शब्दों में कहीं पर भी पार्थक्य नहीं है शब्द अपनी भावनाओं को स्वतः अभिव्यक्त कर रहा है।

यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि शब्द अर्थ और उसका सम्बन्ध नित्य है शाश्वत है। अब सोचने की बात है कि जब शब्द अर्थ और उसका शब्दार्थ नित्य है तो उस शब्दार्थ सम्बन्ध के द्वारा जो अर्थ बोध होगा वह भी स्वभाव सिद्ध ही होगा। जैसे–'गिलास' कहने से गिलास की आकृति वाली वस्तु का ही सर्वत्र बोध होगा उससे भिन्न का नहीं ठीक उसी प्रकार पुत्र कहने से यदि माता–पिता को त्राण दिलाने वाला रक्षक का बोध होता है तो पुत्री पद से शब्दार्थ का बोध भिन्न कैसे हो सकता है ? पुत्र यदि समस्त अधिकारों से युक्त है तो पुत्री क्यों नहीं हो सकती? उसको अपने जन्मजात अधिकार से क्यों वञ्चित किया जाये? इन सभी शब्दों में जब परायापन नहीं है तो समाज में दृष्टिगत होने वाली भिन्नता क्यों है?

इसका एकमात्र कारण मैं समझती हूँ हमारे पारिवारिक संरचना का आधार पितृसत्तात्मक होना न कि इसका कोई शास्त्रीय आधार है। यतः कन्या विवाह के पश्चात् दूसरे घर की श्रृंगार बन जाती है अतः पुरूष प्रधान इस समाज ने उसे सदा भेदक और उपेक्षित दृष्टि से निहारा। परिणाम स्वरूप हमारी भावनायें कन्याओं प्रति संकुचित होती चली गईं। उनके जन्म को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा और धीरे–धीरे शास्त्रीय मुलम्मा चढ़ाते हुए अध्ययन–अध्यापनादि समस्त अधिकार छीन लिये गये। हालांकि इसमें एक विशेष कारण दहेज प्रथा भी है जो एक पृथक् विषय है। प्रसङ्गतः आपको बता दूँ आज भी राजस्थान में एक ऐसी पशुपालक राईका जाति है जहाँ विवाह के अवसर पर वर पक्ष को दहेज देना पड़ता है और वर को बहू के यहाँ रहना पड़ता है फलतः इन लोगों में पुत्री का जन्म शुभकारक है और पुत्र का जन्म अशुभ।

वस्तुतः शास्त्रीय दृष्टि से पुत्र और पुत्री में भिन्नता कथमपि नहीं है। चाहे वह मुखाग्नि देने की बात हो या फिर चाहे वह सपिण्डीकरण की प्रक्रिया ही क्यों न हो। अत्यन्त भावुक हृदय और कोमल प्रकृति की होने के कारण हम भले ही उसे श्मशान घाट पर न जाने दें, उसे पृथक् रखें पर आवश्यकता पड़ने पर उसे इस क्रिया

से वञ्चित कथमपि नहीं किया जा सकता है। अभी गत १६ जुलाई २००३ मास के हिन्दुस्तान मे पुत्रवधू द्वारा श्वसुर को मुखाग्नि देने की बात सामने आयी थी जिस पर काशी के धर्माधिकारियों ने बिना किसी शास्त्रीय आधार के अपनी बात को तीखी प्रतिक्रिया के रूप में अभिव्यक्त की। उनका कथन था–"किसी विशेष परिस्थिति में ही स्त्री मुखाग्नि दे सकती है वह भी केवल अपने पति को इसके विपरीत यदि गलत हाथों से मृतक को मुखाग्नि मिल जाये तो उसे सद्गति प्राप्त नहीं हो सकती।" विचार करने की बात है जीवन का आधार प्राण=ऑक्सीजन होता है और वह जीवनाधार जब शरीर से निकल गया होता है तो उसे मृतक कहा जाता है तदुपरान्त मुखाग्नि ही जाती है और वह कोई भी दे सकता है। पत्नी द्वारा मुखाग्नि देने का विधान तो आप भी मानते हैं पुनः अन्यों को क्यों नहीं? क्या महिला का परिवारस्थ अन्य जनों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता? रही बात सद्गति की प्राप्ति का सो आत्मा ने अपने पुराने शरीर का परित्याग किया और अपने शुभाशुभ कर्मानुसार नवीन शरीर को धारण करता है पुनः महिला या पुरूष द्वारा मुखाग्नि प्राप्त करने पर सद्गति को प्राप्त करना या न करना निर्मूल कल्पना मात्र ही तो है।

प्रत्येक मनुष्य अपने कर्मानुसार ही जाति, आयु और भोग को प्राप्त करता है यही शास्त्रकारों का अभिमत है। इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टि में पुत्र और पुत्री में किसी भी प्रकार की भिन्नता नहीं है समस्त अधिकार दोनों को बराबर ही प्राप्त है।

–नित्यानन्द वेद महाविद्यालय, वाराणसी

मांगो मैं दे दूंगा

✍ चन्द्र प्रकाश द्विवेदी

तुम अपना ईमान मुझे दो,
जप-तप पूजा ध्यान मुझे दो,
जितना करम-धरम माँगोगे, मैं दे दूँगा.
धरती प्यासी रही सदा से नीर की,
मर्यादा पर भंग हुई कब पीर की,
ऐसा रोजा ऐसा व्रत किस काम का
जिससे बढ़ जाये बेचैनी पीर की.
माँगे से अहसान मुझे दो,
भीतर का इंसान मुझे दो
जितनी भी मधु ऋतु माँगोगे, मैं दे दूंगा.
स्वातिबूंद सीपी में गिरती जा रही,
सदियों से मरूभूमि तरसती आ रही,
इधर आरती उधर अजाँ का शोर हैं
लेकिन फिर भी बात बिगड़ती जा रही.
इतना सा वरदान मुझे दो,
अपना शर सन्धान मुझे दो,
जितनी झोली फैलाओगे, मैं भर दूंगा.
भूखों की तादाद हुई कुछ कम नहीं,
इस धरती की कोई रेखा सम नहीं
रात-रात भर जले मजारों पर दिये-
लेकिन मन से मिटा अभी तक तम नहीं.
ज्ञान और अज्ञान मुझे दो
कंधी-केश-कृपाण मुझे दो.
जितनी सुगति-भगति माँगो, मैं दे दूंगा।

-एटा

पृष्ठ १३ का शेष...

लेखकों, पौराणिकों तथा आधुनिक भारतीय लेखकों ने भी स्वीकार किया है। इनमें मैक्समूलर, जे. जौली, वूलर, मैकडानल आदि पाश्चात्यों, विश्वनाथ नारायण माण्डलिक, जगन्नाथ रघुनाथ धारपुरे, हरगोविन्द शास्त्री, जयन्तकृष्ण हरिकृष्णदेव आदि भाष्यकारों और महात्मा गांधी, श्री अरविन्द, (मनुस्मृति को छोड़कर) डॉ० अम्बेडकर आदि अन्य लेखकों के नाम उल्लेखनीय हैं। वाल्मीकिरामायण के श्लोकान्तर के कारण प्रचलित दाक्षिणात्य, पश्चिमोत्तरीय, गौड़ीय नामक तीन–तीन संस्करण और 'जय' नामक व्यासरचित मूल काव्य का 'भारत' और एक लाख के 'महाभारत' नामक काव्य के रूप में विराट् रूप धारण करना, प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रक्षेपीय प्रवृत्ति के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

इन प्रक्षेपों के गदलेपन के कारण प्राचीन भारत के इतिहास, संस्कृति–सभ्यता,समाज का चित्र भी गदला एवं विकृत हो गया है। ऋषि दयानन्द ने अपनी सूक्ष्मेक्षिका से प्रक्षेपों से गदली मनुस्मृति को पहचाना और उसको स्वच्छ करने के लिए प्रेरणा एवं मार्गदर्शन किया। आज हम प्रक्षेपरहित मनुस्मृति के दर्पण में वैदिक काल के समाज, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास का यथार्थ और उज्ज्वल चित्र देख सकते हैं। इस प्रकार प्रक्षेपों की खोज और उसके शोध की प्रेरणा ऋषि दयानन्द की अपूर्व वैचारिक देन है।

४. मनुस्मृति की समाज व्यवस्था का मौलिक स्वरूप–

मनुस्मृति की समाज व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण एवं विवादास्पद बिन्दु वर्णव्यवस्था है। जैसा कि 'मनुस्मृति के प्रतिपाद्य विषय' के अन्तर्गत प्रमाणपूर्वक बताया गया है कि वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत में मनुस्मृति के प्रतिपाद्य केवल चार वर्ण हैं, वे हैं–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। मनुस्मृति आये जाति–प्रतिपादक श्लोकों को देखकर आलोचकों का मानना है कि मनुस्मृति जन्मना जातिवाद का प्रतिपादन है। अपने ग्रन्थों में ऋषि दयानन्द ने दर्जनों स्थानों पर मनु के श्लोकों को उद्धृत करते हुए यह दर्शाया है कि मनुस्मृति की मूलव्यवस्था कर्मणा वर्णव्यवस्था है। उनके कुछ कथन सिद्धान्त रूप में उद्धृत किये जाते हैं–

(क) *"शूद्रो ब्राह्मणतामेति"* (मनु० १०.६५) श्लोक को पांच स्थानों पर उद्धृत किया है। एक स्थान पर वे लिखतेहैं– "चारों वर्णों में जिस–जिस वर्ण के सदृश जो–जो पुरूष वा स्त्री हो, वह–वह उसी वर्ण में गिनी जावे" (सत्यार्थप्रकाश समु० ४)

(ख) मनुस्मृति में वर्णों के कर्मों का निर्धारण करने वाले श्लोकों की व्याख्या करने के उपरान्त ऋषि लिखते हैं–

"ये संक्षेप से वर्णों के गुण और कर्म लिखे। जिस–जिस पुरुष में जिस–जिस वर्ण के गुण कर्म हों उस–उस वर्ण का अधिकार देना। ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं। क्योंकि उत्तम वर्णों को भय होगा कि जो हमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोषयुक्त होंगे तो शूद्र हो जायेंगे और सन्तान भी डरते रहेंगे कि जो हम उक्त चाल–चलन और विद्यायुक्त न होंगे तो शूद्र होना पड़ेगा, और नीच वर्णों को उत्तम वर्णस्थ होने के लिये उत्साह बढ़ेगा।" (सत्यार्थप्रकाश, समु० ४)

(ग) "शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण, यह व्यवस्था गुण, कर्म, और स्वभाव से की जा सकती है; और प्राचीन आर्य लोगों की व्यवस्था इसी प्रकार थी। वे जन्म से ब्राह्मणादि वर्ण नहीं मानते थे" (उपदेश मंजरी ४)

(घ) जन्मना वर्णव्यवस्था मानने वालों से महर्षि ने व्यंगपूर्वक महत्वपूर्ण व्यावहारिक प्रश्न करके कर्मणा वर्णव्यवस्था को सिद्ध किया है। वे पूछते हैं–

"जो कोई रज–वीर्य के योग से वर्णाश्रम व्यवस्था माने और गुण कर्मों के योग से न माने तो उससे पूछना चाहिये कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ नीच, अन्त्यज अथवा कृश्चिन, मुसलमान हो गया हो, उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते? यहां यही कहोगे कि उसने ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिये, इसलिये वह ब्राह्मण नहीं है। इससे यह

भी सिद्ध होता है जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण–कर्म–स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिये"। (सत्यार्थप्रकाश, समु० ४)

"अब यदि कहा जाये कि जन्म ही से ब्राह्मण होता है तो जब कोई ब्राह्मण अपने सदाचरण को छोड़ यवनादिकों के समान आचरण करने लग जाता है तो उसका ब्राह्मणत्व क्यों नष्ट होता है? इससे सिद्ध हुआ कि केवल जन्मसिद्ध ही ब्राह्मणत्व नहीं, किन्तु आचार–सिद्ध है। यह तुम्हारे ही कामों से सिद्ध होता है। जिस समय इस आर्यावर्त में अखण्ड राज्य, अखण्ड ऐश्वर्य था, उस समय वर्णाश्रम की ऐसी ही व्यवस्था थी।" (उपदेश मंजरी ४)

(अ) डॉ० अम्बेडकर द्वारा वैदिक और ऋषि–वर्णित वर्णव्यवस्था की प्रशंसा :– महर्षि मनु ने वेदों (ऋग्वेद १०.६०.११.१२; यजुर्वेद ३१. १०–११ अथर्व. १६.६.५–६) से वर्णव्यवस्था को ग्रहण किया और फिर ऋषि दयानन्द ने उन दोनों से। उन्हीं के आधार पर उन्होंने स्त्री–शूद्रों को सभी धार्मिक अधिकार और सम्मान प्रदान किये। आर्यसमाज ने उन्हें समानता का और वेद–शास्त्रों की शिक्षा का अवसर दिया। यह सब मनु की व्यवस्था के आधार के कारण संभव हो सका है।

गुण–कर्म पर आधारित वर्णव्यवस्था और ऋषि दयानन्द की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं– "वेद में वर्ण की धारणा का सारांश यह है कि व्यक्ति वह पेशा, अपनाये, जो उसकी स्वाभाविक योग्यता के लिए उपयुक्त हो।... मैं मानता हूँ कि स्वामी दयानन्द व कुछ अन्य लोगों ने वर्ण के वैदिक सिद्धान्त की जो व्याख्या की है, वह बुद्धिमत्तापूर्ण है और घृणास्पद नहीं है। मैं यह व्याख्या नहीं मानता कि जन्म किसी व्यक्ति का समाज में स्थान निश्चित करने का निर्धारक तत्त्व हो। वह केवल योग्यता को मान्यता देती है" (वही, जातिप्रथा उन्मूलन पृ० ११६) इन उद्धरणों में डॉ० अम्बेडकर ने मनु की समाज–व्यवस्था को गुण–कर्म पर आधारित वर्ण–व्यवस्था माना है, जो उनकी राय में आपत्ति रहित एवं बुद्धिमत्तापूर्ण है। मनु और अम्बेडकर, दोनों में यहां अद्भुत समानता है तथा किसी प्रकार का कोई विरोध नहीं है।

शायद इसी कारण डॉ० अम्बेडकर की लेखनी से ये शब्द निकल पड़े–"एक बात मैं आप लोगों को बताना चाहता हूँ कि मनु ने जाति के विधान का निर्माण नहीं किया और न वह ऐसा कर सकता था" (वही, भारत में जातिप्रथा, पृ० २६)। कोई कितना भी आग्रह करता रहे, लेकिन यह निश्चित है कि डॉ० अम्बेडकर ने यह वाक्य लिखकर मनु को, अपितु सभी मनुओं को 'जाति–पाति निर्माता' के आरोप से सदा–सदा के लिए मुक्त कर दिया है।

अन्यत्र वे लिखते हैं–"चातुर्वर्ण्य की वैदिक पद्धति जाति–व्यवस्था की अपेक्षा उत्तम थी. प्राचीन चातुर्वर्ण्य पद्धति में दो अच्छाइयां थीं जिन्हें ब्राह्मणवाद ने स्वार्थ में अन्धा होकर निकाल दिया। पहली, वर्णों की आपस में एक–दूसरे से पृथक् स्थिति नहीं थी। एक वर्ण का दूसरे वर्ण में विवाह, और एक वर्ण का दूसरे वर्ण के साथ भोजन, दो बातें ऐसी थीं जो एक–दूसरे को आपस में जोड़े रखती थीं।" "बौद्धपूर्व समय में चातुर्वर्ण्य–व्यवस्था एक उदार व्यवस्था थी और उसमें गुंजाइश थी।... किसी भी वर्ण का पुरुष विधिपूर्वक दूसरे वर्ण की स्त्री से विवाह कर सकता था। इस दृष्टिकोण की पुष्टि में अनेक दृष्टांत उपलब्ध हैं।" (वही, ब्राह्मणवादकी विजय, पृ० १७५)।

"शूद्र वेदों का अध्ययन कर सकते थे। कुछ ऐसे शूद्र भी थे, जिन्हें ऋषि–पद प्राप्त था और जिन्होंने वेदमन्त्रों की रचना की। कवष एलूष नामक ऋषि की कथा बहुत ही महत्वपूर्ण है" (वही, शूद्र और प्रतिक्रान्ति, ३२४)। ये संदर्भ कुछ नमूने मात्र हैं। ऐसे दर्जनों स्थल हैं, जहां इन व्यवस्थाओं की प्रशंसा है और डॉ० अम्बेडकर और मनुस्मृति के मूल विधानों में कोई विरोध नहीं है।

(आ) 'वर्ण' का अर्थ और वर्णनिर्धारण की विधि–

वर्णव्यवस्था में विद्यमान 'वर्ण' शब्द स्वयं अपनी व्यवस्था के स्वरूप पर प्रकाश डाल रहा

है। यह 'वृञ्–वरणे' धातु से बना है, जिसका अर्थ है– 'जिसे वरण किया जाये'। आचार्य यास्क निरुक्त में इसका अर्थ करते हुए कहते है– *"वर्णः वृणोतेः"* (२.१४)= वरण करने के कारण इनको 'वर्ण' कहा जाता है। व्यक्ति अपनी रूचि और योग्यता के अनुसार किसी भी 'वर्ण' की दीक्षा ले सकता है, इसी कारण इनका नाम वर्ण है। ऋषि दयानन्द वर्ण शब्द का अर्थ और उसके निर्धारण का समय इस प्रकार बतलाते हैं–

(क) *"वर्णो वृणोतेः"* (निरूक्त २.१४) इनका नाम वर्ण इसलिये है कि जिसके गुण कर्म जैसे हों, वैसा ही उसको अधिकार देना चाहिए" (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वर्णाश्रमविषय)।

"जो गुण और कर्मों के योग से ग्रहण किया जाता है, वह 'वर्ण' शब्दार्थ से लिया जाता है"
(आर्योद्देश्यरत्नमाला १६६)

(ख) वर्ण का चयन गुरूकुल में प्रवेश के समय किया जाता है किन्तु उसकी पूर्ण शिक्षा–दीक्षा प्राप्त करने के बाद ही उसके अन्तिम निर्धारण की घोषणा आचार्य करता है। जैसे आजकल छात्र कला, विज्ञान, इंजीनियरिंग, चिकित्सा या कानून, जिस पाठ्यक्रम में प्रवेश लेता है, उसको पूर्ण करने के बाद शिक्षा–संस्थान वैसी ही डिग्री उसको देकर उस विषय का स्नातक घोषित करते हैं। मनुस्मृति के आधार पर ऋषि दयानन्द लिखते हैं –

"सब वर्णों के अध्ययन का जो समय है, वह ब्रह्मचर्य है"
(उपदेश मंजरी ४)

"यह गुण कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें वर्ष और पुरूषों की पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिए" (सत्यार्थप्रकाश, समु० ४)

" यह निश्चित जाना जाता है कि पच्चीसवें वर्ष में वर्णों का अधिकार ठीक–ठीक होता है, क्योंकि पच्चीस वर्ष तक बुद्धि बढ़ती है। इसलिये उसी समय गुण–कर्मों की ठीक–ठीक परीक्षा करके वर्णाधिकार होना उचित है।" (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका अध्ययनविषय)

(ग) द्विज किस प्रकार बनता है? इस पर वेद के आधार पर प्रकाश डालते हुए ऋषि दयानन्द लिखते हैं– "जिसको विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त माता–पिताओं से एक जन्म, और दूसरा जन्म आचार्य और विद्या से हो, वह 'द्विज' होता हुआ विद्वान् हो" (ऋग्वेदभाष्य १.१४६.५, भावार्थ)

वर्णव्यवस्था में वर्ण का निर्धारण किस प्रकार होता है अथवा द्विज किस प्रकार बनता है, इसको मनुस्मृति में स्पष्ट किया गया है। मनु ने कहा है कि माता–पिता से उत्पत्ति तो केवल 'शरीरजन्म' है, असली जन्म तो विद्याप्राप्ति का 'ब्रह्मजन्म' है, जो उपनयन संस्कार के द्वारा मिलता है (*"औपनयनिको विधि... उत्पत्ति– व्यञ्जकः"* २.६८)। ब्रह्मजन्म प्राप्त करने के उपरान्त अर्थात् वर्णानुसार शिक्षा–दीक्षा प्राप्त करने के बाद स्नातक होने पर वर्ण का निश्चय और घोषणा आचार्य करता है। (*"आचार्यस्त्वस्य यां जातिमुत्पादयति सावित्र्या"* २.१४८)। तभी कोई द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य बनता है।

जिसका ब्रह्मजन्म नहीं होता, वह 'एकजाति' अर्थात् शूद्र रह जाता है। इस प्रकार अनपढ़– अशिक्षित, पूर्व वर्णों की शिक्षा–दीक्षा से रहित व्यक्ति को शूद्र कहा जाता है। जैसे आजकल बालक कला, वाणिज्य, विज्ञान, इंजीनियरिंग, चिकित्सा, या कानून जिस पाठ्यक्रम में प्रवेश लेता है, स्नातक बनने के बाद शिक्षा–संस्थान वैसी ही डिग्री देते हैं। उसी प्रकार अध्ययन के उपरान्त ही आचार्य वर्ण का निर्धारण कर घोषणा करता था।

द्विज शब्द स्वयं अपने अर्थ को स्पष्ट कर रहा है कि जिसके दो जन्म होते हैं, वही द्विज होता है। इसी आधार पर संस्कृत में दांत और पक्षियों को 'द्विज' कहते हैं, क्योंकि उनके दो जन्म होते हैं। एक जन्म वाला जो कोई है, वह शूद्र रह जाता है। स्पष्ट है कि मनुस्मृति में जन्म से वर्ण या जाति–निर्धारण नहीं है। यदि जन्म से होता है, तो आचार्य द्वारा उसका निर्धारण करना संभव ही नहीं होता।

मनुस्मृति में स्वयं संकेतित मूल प्रसंगों में यदि कहीं 'जाति' शब्द आया भी है, तो वह जन्माधारित जातिवाद के अर्थ में नहीं अपितु

जन्म या उत्पत्ति या वर्ण के अर्थ में आया है जैसे – *"जात्यन्धबधिरौ* (६. २०१)= जन्म से अंधे और बहरे। *"जाति स्मरति पौर्विकीम्"* (४.१४८) = पूर्वजन्म को स्मरण कर लेता है। "द्विजाति" = दो जन्मों वाला ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। "एकजातिः" = एक जन्म वाला शूद्र।

(इ) वर्ण और जातिव्यवस्था परस्परविरोधी – मनुस्मृति में प्रतिपाद्य विषय के रूप में विहित कर्मणा वर्णव्यवस्था जन्माधारित नहीं हो सकती, क्योंकि जहां वर्ण होगा वहां जन्मना जातिवाद नहीं हो सकता। ये दोनों व्यवस्थाएं परस्परविरोधी है। वर्णव्यवस्था में 'वर्ण' आधार है, जातिवाद में 'जन्म'। वर्ण, कर्मों और योग्यता से प्राप्त होता है, जबकि जाति माता–पिता से। वर्ण परिवर्तनशील होता है, जबकि जाति मरणपर्यन्त रहती है।

डॉ० अम्बेडकर का मत– डॉ० अम्बेडकर ने इस तथ्य को अनेक स्थलों पर स्वीकार किया है– "जाति का आधारभूत सिद्धान्त वर्ण के आधारभूत सिद्धान्त से मूल रूप से भिन्न है। न केवल मूल रूप से भिन्न है, बल्कि मूल रूप से परस्परविरोधी है। पहला सिद्धान्त (वर्ण) गुण पर आधारित है।" (वही, जातिप्रथा उन्मूलन, पृ०८१)

वर्ण और जाति दोनों का एक विशेष महत्व है जिसके कारण दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। वर्ण तो पद या व्यवसाय किसी भी दृष्टि से वंशानुगत नहीं है। दूसरी ओर, जाति में एक ऐसी व्यवस्था निहित है जिसमें पद और व्यवसाय, दोनों ही वंशानुगत हैं और इसे पुत्र अपने पिता से ग्रहण करता है" (वहीं, ब्राह्मणवाद की विजय, पृ०१६६)

(ई) वर्ण–परिवर्तन का विधान – एक बार वर्णनिर्धारण के बाद यदि कोई पुनः वर्णपरिवर्तन करना चाहता था तो अभीष्ट वर्ण का प्रशिक्षण प्राप्त कर वर्णपरिवर्तन कर सकता था। उसके प्रशिक्षण का निर्णय शिक्षण संस्था अथवा शासन की ओर से धर्मसभा करती थी। मनमाने ढंग से कोई जब चाहे वर्ण नहीं बदल सकता था। आज भी नौकरी और व्यवसायों के लिये शिक्षण संस्था और शासन अनुमति देते हैं, प्राचीन काल में यही देते थे।

मनु की कर्मणा वर्ण व्यवस्था में व्यक्ति को वर्णपरिवर्तन की स्वतंत्रता, सुविधा और दण्डरूप में अपरिहार्यता थी। इस विषय में मनुस्मृति का एक महत्वपूर्ण श्लोक प्रमाणरूप में उद्धृत किया जाता है जो सभी सन्देहों को दूर कर देता है। ऋषि दयानन्द ने इस श्लोक को पांच बार उद्‌धृत कर वर्ण परिवर्तन को सिद्ध किया है–

शूद्रो ब्राह्मणताम् एति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियात् जातमेवं तु विद्याद् वैश्यात्तथैव च।।

(अ०, १०, श्लोक ६५)

अर्थात्–'गुण, कर्म, योग्यता के आधार पर ब्राह्मण, शूद्र बन जाता है और शूद्र ब्राह्मण। इसी प्रकार क्षत्रियों और वैश्यों में भी वर्णपरिवर्तन हो जाता है।'

इसके अतिरिक्त निर्धारित आचार सम्बन्धी कर्त्तव्यों के परित्याग से भी व्यक्ति को शासन द्वारा वर्ण से पतित किया जाता था। जैसे आज लापरवाही या अपराध करने पर नौकरी से निकाल दिया जाता है। इसी प्रकार निर्धारित कर्मों के त्याग से वर्ण परिवर्तन हो जाता था। मनुस्मृति में दर्जनों ऐसे श्लोक हैं। जिनमें निर्धारित कर्मों के त्याग से और निकृष्ट कर्मों के कारण द्विजों को शूद्र कोटि में परिगणित करने का विधान किया है और शूद्रों को श्रेष्ठ कर्मों से उच्चवर्ण की प्राप्ति का विधान है। (द्रष्टव्य २.३७, ४०, १०३,१६८, ४.२४५ आदि श्लोक)

(उ) वर्ण परिवर्तन के ऐतिहासिक प्रमाण– मनु की कर्मणा वर्णव्यवस्था का यथार्थस्वरूप प्रस्तुत करते हुए ऋषि दयानन्द ने वर्ण परिवर्तन के ऐतिहासिक उदाहरण के रूप में सत्यकाम जाबाल, विश्वामित्र, मातंग ऋषि सगरपुत्र असमंजस, कर्ण आदि के नाम का उल्लेख किया है। कुछ लोग इनको अपवाद उदाहरण कहकर कर्माधारित वर्णव्यवस्था को नकारने का प्रयास करते हैं। उन्हें दो बातें याद रखनी चाहिए। एक तो यह कि प्राचीन इतिहास में ऐसे वर्णपरिवर्तन के दर्जनों उदाहरण मिलते हैं, जो अपवाद नहीं कहला सकते, और न ही जातियों का वर्णपरिवर्तन अपवाद कहलाता है। दूसरी, जन्मना जातिवाद के प्रचलन के बाद वर्णपरिवर्तन का कोई उदाहरण नहीं मिलता। ये वर्णपरिवर्तन

इस कारण ही स्वीकार हुए क्योंकि उस समय कर्मणा वर्णव्यवस्था थी। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

(१) स्वायम्भुव मनु के ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत के तीन पुत्र ब्राह्मण बन गये थे। (२) वैवस्वत मनु का पुत्र नाभानेदिष्ट वैश्य बन गया था (३) दुष्यन्तपुत्र भरत के तीन पुत्र नर, गर्ग और महावीर्य ब्राह्मण बने। (४) दासी का पुत्र कवष ऐलूष और शूद्रापुत्र 'वत्स' मन्त्रद्रष्टा होने के कारण दोनों ऋग्वेद के सूक्तों के द्रष्टा ऋषि कहलाये। (५) क्षत्रिय कुल में उत्पन्न राजा विश्वरथ, ब्रह्मर्षि विश्वामित्र बने। (६) अज्ञात कुल के सत्यकाम जाबाल ब्रह्मवादी ऋषि बने। (७) चंडाल के घर उत्पन्न 'मातंग' एक ऋषि कहलाये। (८) (कुछ कथाओं के अुनसार) निम्न कुल में उत्पन्न वाल्मीकि, महर्षि वाल्मीकि की पदवी को प्राप्त कर गये। (९) दासीपुत्र विदुर राजा धृतराष्ट्र के महामंत्री बने और महात्मा कहलाये। (१०) दशरथ पुत्र श्रीराम और यदु कुल में उत्पन्न श्रीकृष्ण 'भगवान्' माने गये और वे ब्राह्मणों के भी पूज्य बने, जबकि उनका कुल क्षत्रिय था। इसके विपरीत कर्मों के कारण (११) पुलस्त्य ऋषि का वंशज लंकापति रावण 'राक्षस' कहलाया। (१२) राम के पूर्वज रघु का 'प्रवृद्ध' नामक पुत्र नीच कर्मों के कारण क्षत्रियों से बहिष्कृत होकर 'राक्षस' बना। (१३) सगरपुत्र असमंजस को शूद्र घोषित किया गया। (१४) राजा त्रिशंकु चंडालभाव को प्राप्त हुआ। (१५) विश्वामित्र के कई पुत्र शूद्र, कई क्षत्रिय और ब्राह्मण कहलाये। (१६) सूतपुत्र कर्ण क्षत्रिय बना।

जातियों के वर्णपरिवर्तन– व्यक्तिगत उदाहरणों के अतिरिक्त, इतिहास में पूरी जातियों का अथवा जाति के पर्याप्त भाग का वर्ण परिवर्तन भी मिलता है। महाभारत और मनुस्मृति में कुछ पाठभेद के साथ पाये जाने वाले श्लोकों से ज्ञात होता है कि निम्नलिखित जातियां पहले क्षत्रिय थीं किन्तु वे अपने क्षत्रिय–कर्त्तव्यों के त्याग के कारण और ब्राह्मणों द्वारा बताये प्रायश्चित न करने के कारण शूद्र कोटि में परिगणित हो गयीं–

शनकैस्तु क्रियालोपादिमा क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च।।
पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजाः यवनाः शकाः।
पारदाः पल्हवाश्चीनाः किराताः दरदाः खशाः।।

(मनु० १०.४३–४४)

अर्थात्– अपने निर्धारित कर्त्तव्यों का त्याग कर देने के कारण और फिर ब्राह्मणों द्वारा बताये प्रायश्चितों को न करने के कारण धीरे–धीरे ये क्षत्रिय जातियां शूद्र कहलायीं– पौण्ड्रक, औड्र, द्रविड, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पल्हव, चीन, किरात, दरद,खश। महाभारत अनु. ३५.१७–१८ में इनके अतिरिक्त मेकल, लाट, काण्वशिरस, शौण्डिक, दार्व, चौर, शबर, बर्बर जातियों का भी उल्लेख है।

(ऊ) डॉ० अम्बेडकर के मत में वर्णपरिवर्तन–

डॉ० अम्बेडकर ने माना है कि "अन्य समाजों के समान भारतीय समाज भी चार वर्णों में विभाजित था, ये हैं– १. ब्राह्मण या पुरोहित वर्ग, २. क्षत्रिय या सैनिक वर्ग, ३. वैश्य अथवा व्यापारिक वर्ग, ४. शूद्र अथवा शिल्पकार और श्रमिक वर्ग। इस बात पर विशेष ध्यान देना होगा कि आरंभ में यह अनिवार्य रूप से वर्ग–विभाजन के अन्तर्गत व्यक्ति की दक्षता के आधार पर अपना वर्ण बदल सकता था और इसलिए वर्णों को व्यक्तियों के कार्य की परिवर्तनशीलता स्वीकार्य थी" (वही, भारत में जातिप्रथा, पृ० ३०)।

डॉ० अम्बेडकर ने वर्णव्यवस्था में मनु द्वारा किये जाने वाले वर्ण–परिवर्तन की पुष्टि मतान्तर से इन शब्दों में की है– "इस बात की पुष्टि के लिए परम्परा के आधार पर पर्याप्त प्रमाण हैं, जिनका उल्लेख धार्मिक साहित्य में हुआ है.....

इस परम्परा के अनुसार किसी भी व्यक्ति के वर्ण का निश्चय करने का काम अधिकारियों के एक दल द्वारा किया जाता था, जिन्हें मनु और सप्तर्षि कहते थे। व्यक्तियों के समूह में से मनु उनका चुनाव करता था, जो क्षत्रिय और वैश्य होने योग्य होते थे और सप्तर्षि उन व्यक्तियों को चुनते थे जो ब्राह्मण होने के योग्य होते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य होने के लिए मनु और

सप्तर्षियों द्वारा व्यक्तियों का चुनाव करने के बाद बाकी व्यक्ति जो नहीं चुने जा सकते थे, वे शूद्र कहलाते थे। .. पिछली बार जो लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य होने के लिए चुने गये होते थे, वे केवल शूद्र होने के योग्य होने के कारण रह जाते थे। इस प्रकार वर्ण के व्यक्ति बदलते रहते थे" (वही, ब्राह्मणवाद की विजय, पृ० १७०)।

(ए) महाभारत और बौद्धकाल तक वर्णव्यवस्था– उक्त प्रमाणों और युक्तियों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मनु द्वारा विहित वर्णव्यवस्था में सभी व्यक्तियों को गुण–कर्मानुसार वर्ण में दीक्षित होने के समान अवसर प्राप्त थे। ऋग्वेद से लेकर महाभारत (गीता) पर्यन्त यह कर्माधारित वर्णव्यवस्था चलती रही है। गीता में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है–

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण–कर्म–विभागशः" (४.१३)

अर्थात्– 'गुण–कर्म–विभाग के अनुसार चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का निर्माण किया गया है। जन्म के अनुसार नहीं।'महाभारत और गीता में चार वर्णों के कर्मों का विधान है और स्पष्टतः कर्म से चार वर्ण माने हैं (गीता १८.४२,४३ः महाभारत शान्ति० १८६)

बाद तक भी वर्णपरिवर्तन के उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। जे. विल्सन और एच.एल.रोज़ के अनुसार राजपूताना, सिन्ध और गुजरात के पोखरना या पुष्करणा ब्राह्मण, और उत्तर प्रदेश में उन्नाव जिला के आमताड़ा के पाठक और महावर राजपूत वर्णपरिवर्तन से निम्न जाति से ऊंची जाति के बने (देखिए हिन्दी विश्वकोश, भाग ४)

ऋषि दयानन्द ने भी इतिहास के उक्त तथ्य का उल्लेख करते हुए माना है कि महाभारत तक चारों वर्णों में परस्पर प्रीति का व्यवहार था–

"जनमेजय के राज्य तक चारों वर्णों का परस्पर में बर्ताव होता था और वे सामाजिक नियम, राज–सभा, धर्मसभा, विद्या–सभा के प्रबन्ध में रीत्यनुसार चलते थे। यह बात कि चारों वर्णों का परस्पर में बर्ताव कैसा था, आप लोगों को महाभारत के राजसूय पर्व और अश्वमेध पर्व के देखने से विदित हो जायेगी" (उपदेश मंजरी ११)।

डॉ० अम्बेडकर ने शान्तनु क्षत्रिय और मत्स्य शूद्र स्त्री के विवाह का उदाहरण देकर इस तथ्य को स्वीकार किया है (वही ब्राह्मणवाद की विजय, पृ० १७५, १६५)। इससे भी आगे बौद्धकाल तक भी अन्तर–जातीय विवाह और अन्तर–जातीय भोजन का प्रचलित होना उन्होंने स्वीकार किया है। जातिगत असमानता तब तक उभर गयी थी (वही, सुधारक और उनकी नियति, पृ० ७५)। डॉ० अम्बेडकर मानते हैं कि "तब व्यवहार में लचीलापन था। आज की तरह कठोरता नहीं थी।" इससे यह अभिप्राय निकला कि बौद्धकाल तक भी जाति–व्यवस्था कठोर नहीं बन पायी थी। तब तक प्राचीन वर्णव्यवस्था का ही अधिक प्रभाव था। इससे यही निष्कर्ष स्पष्ट रूप से सामने आता है कि महात्मा बुद्ध से सैंकड़ों पीढ़ी पूर्व जो आदिपुरूष मनु हुए हैं, उनके समय में जाति–पाति–व्यवस्था का नामोनिशान भी नहीं था। उस समय विशुद्ध गुण–कर्म पर आधारित वैदिक वर्ण–व्यवस्था थी, जिसकी डॉ० अम्बेडकर ने गत उद्धरणों में प्रशंसा की है।

५. मनुस्मृति की समाजव्यवस्था में शूद्रों का सम्मान और अधिकार

वर्तमान समय में, मनु और मनुस्मृति के प्रति सर्वाधिक आक्रोश उसमें वर्णित शूद्र–सम्बन्धी दृष्टिकोण को लेकर है। आलोचकों का कहना है कि मनु ने दलितों को असवर्ण, अछूत, नीच, सम्मान के अयोग्य, सर्वाधिक दण्डनीय, कहकर और उसको धार्मिक तथा शैक्षिक अधिकारों से वंचित कर उसके साथ घोर अन्याय किया है और उसे पिछड़ा दिया है।

उन आलोचकों को मैं कहना चाहूंगा कि उनके उक्त आरोप एक तरफा और निराधार हैं। यदि वे मनुस्मृति को मौलिकता की दृष्टि से पढ़ेगें तो पायेंगें कि वे जो मनु के नाम पर कह रहे हैं, वह मनु ने वस्तुतः कहा ही नहीं है। वे क न केवल प्रक्षिप्त श्लोकों पर आधारित हैं। र्णव्यवस्था के गत मौलिक विवेचन में यह सिद्ध हो गया है। यहाँ बहुत ही संक्षेप में मैं शूद्र सम्बन्धी मन्तव्यों को प्रस्तुत करूंगा।

सबसे पहला प्रमुख तथ्य तो यह है कि मनु की व्यवस्था कर्म पर आधारित वर्णव्यवस्था है। उन्होंने किसी भी व्यक्ति को, चाहे वह आज की भाषा में दलित है अथवा पिछड़ा, जन्म के आधार पर 'शूद्र' कहा ही नहीं है। मनु का नाम लेकर आलोचकों ने, या फिर इन लोगों ने स्वयं अपने ऊपर शूद्र शब्द को थोंपा है।

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों की शिक्षा–दीक्षा प्राप्त कर लेते हैं, वे उस–उस वर्ण के कहलाते हैं और दूसरे विद्याजन्म के कारण 'द्विज' कहलाते हैं। जो उच्च वर्णों की विधिवत् शिक्षा–दीक्षा नहीं प्राप्त करते या अशिक्षित होते हैं, वे 'शूद्र' कहलाते हैं। इन्हें केवल एक शरीरजन्म के कारण 'एकजाति' कहते हैं। बालिद्वीप में आज भी ये नाम प्रचलित हैं और वहां अस्पृश्यता का व्यवहार नहीं है। ऐसा व्यक्ति केवल शारीरिक कार्य कर सकता है, अतः 'शूद्र' का कार्य सेवाकार्य निर्धारित किया है। आज भी अशिक्षित या अल्पशिक्षित चतुर्थ या तृतीय श्रेणी कर्मचारी बनते हैं। उनका नाम सेवक, अर्दली, प्रेष्य, भृत्य, पीयन, आदेशवाहक आदि हैं शूद्र का भी यही अर्थ हैं–*'शु द्रवति'* अर्थात् जो स्वामी के आदेशानुसार कार्य निपटाता है, या *'शोच्यां स्थितिमापन्नः द्रवति'* अर्थात् निम्न स्थिति के कारण जो खिन्न रहता है, किन्तु शूद्र शब्द जन्मना जातिवाद के कारण निन्दित अर्थ में प्रयुक्त हो गया।

मनु ने शूद्र को घरों में पाचन, सेवाकार्य आदि सौंपे हैं और उन्हें अतिथि के रूप में घर में आने पर भोजन कराने का विधान किया गया है। इससे भी बढ़कर दम्पती को आदेश है कि वे अपने भृत्यों (शूद्रों) को स्वयं खाने से पहले खाना खिलायें, फिर आप खायें (मनु० १.६१, ३.११६)। यह कितना उच्च सभ्यता, सम्मान और श्रेष्ठ व्यवहार का सूचक है। ऋषि दयानन्द ने भी मनु के अनुसार शूद्रों को पाचन कार्य वर्णित किया है (उपदेश मंजरी १०)। इस प्रकार मनु की व्यवस्था के अनुसार शूद्र कभी अस्पृश्य नहीं हो सकता। अस्पृश्य की मिथ्या कल्पना जातिवाद ने की है।

मनु के मतानुसार शूद्र सवर्ण एवं आर्य हैं। शूद्रों को चार आर्य वर्णों में परिगणित किया है (मनु० १०.४)। *वर्णापतेम्... अनार्यम्"* (मनु. १०.५७) से स्पष्ट संकेत है कि मनु वर्णों से बाह्य को अनार्य मानते हैं। डॉ० अम्बेडकर ने मनु के इस मत को यथावत् स्वीकार कर शूद्रों को आर्य और सवर्ण माना है–

"धर्मसूत्रों की यह बात कि शूद्र अनार्य हैं, नहीं माननी चाहिए। यह सिद्धान्त मनु तथा कौटिल्य के विपरीत है" (शूद्रों की खोज, पृ० ४२) तथा "दुर्भाग्य तो यह है कि लोगों के मन में यह धारणा घर कर गयी है कि शूद्र अनार्य थे किन्तु इस बात में कोई संदेह नहीं है कि प्राचीन आर्य–साहित्य में इस सम्बन्ध में रंच मात्र भी कोई आधार प्राप्त नहीं होगा।" "शूद्र आर्य ही थे अर्थात् वे जीवन की आर्य–पद्धति में विश्वास रखते थे। शूद्रों को आर्य स्वीकार किया गया था और कौटिल्य के अर्थशास्त्र तक में उन्हें आर्य कहा गया है। शूद्र आर्य समुदाय के अभिन्न, जन्मजात और सम्मानित सदस्य थे" (अम्बेडकर वाङ्मय, शूद्र और प्रतिक्रान्ति, पृ० ३१६, ३२२)।

शूद्र दास भी नहीं था क्योंकि उसको वेतन देने का विधान है (मनु० ७.१२५–१२६; ८.२१६)। नब्बे वर्ष से ऊपर के शूद्र को अशिक्षित होते हुए भी उच्च वर्णों द्वारा पहले सम्मान देने का आदेश है– *"मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः"* (२.२११)। मनु ने *"न धर्मात् प्रतिषेधनम्"* (१०.१२६) तथा शूद्र से धर्म सीखने का कथन करके यह स्पष्ट किया है कि शूद्रों को धर्मपालन का अधिकार था (मनु० २.१३८)। ऋषि दयानन्द ने अनेक स्थलों पर *"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। शूद्राय चार्याय"* (यजुर्वेद २६.२) मन्त्र को उद्धृत करके शूद्रों को सभी धार्मिक अधिकार प्रदान किये हैं। डॉ० अम्बेडकर ने भी वैदिक वर्णव्यवस्था में शूद्रों द्वारा वेदाध्ययन किया जाना स्वीकार किया है, जिसका उद्धरण पूर्व दिया जा चुका है।

मनु की दण्ड व्यवस्था में शूद्र को सबसे कम दण्ड का विधान है और ब्राह्मण तथा राजा को सर्वाधिक क्योंकि शूद्र बुद्धिस्तर और समाज स्तर में निम्न है, अतः उसे दण्ड भी निम्न है।

ब्राह्मण उच्च है, अतः दण्ड भी अधिक है–

अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम्।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य च।।
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वाऽपि शतं भवेत्।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिः तद्दोषगुणविद्धि सः।

(मनु० ८.३३७–३३८)

अर्थात्–किसी चोरी आदि के अपराध में शूद्र को आठ गुणा दण्ड दिया जाता है तो वैश्य को सोलहगुणा, क्षत्रिय को बत्तीस गुणा, ब्राह्मण को चौंसठगुणा, अपितु उसे सौगुणा अथवा एक सौ अट्ठाईस गुणा दण्ड करना चाहिए, क्योंकि उत्तरोत्तर वर्ण के व्यक्ति अपराध के गुण–दोषों और उनके परिणामों, प्रभावों आदि को भली–भाँति समझने वाले हैं।

इसके साथ ही मनु ने राजा को आदेश दिया है कि उक्त दण्ड से किसी को छूट नहीं दी जानी है। चाहे वह आचार्य, पुरोहित और राजा के पिता–माता ही क्यों न हों। राजा दण्ड दिये बिना मित्र को भी न छोड़े और कोई समृद्ध व्यक्ति शारीरिक दण्ड के बदले में विशाल धनराशि देकर छूटना चाहे तो उसे भी न छोड़ें। (८.३३५–३४७)।

जब वर्णव्यवस्था विकृत होकर जन्मना जाति–पांति में बदल गयी तब शिक्षा प्रदान करने के उत्तरदायी ब्राह्मण वर्ग ने दलितों का उपनयन संस्कार बंद करके उनको शिक्षा से वंचित कर दिया। शिक्षा से वंचित होने पर उन्हें "शूद्र" घोषित कर दिया और फिर वे जातिवाद के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी शूद्र कहलाने लगे। धीरे–धीरे उनके साथ रोटी–बेटी के सम्बन्ध भी समाप्त होते गये और उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। यह भारतीय समाज के लिए एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति थी।

कुछ लोग भ्रान्तिवश इसकी जिम्मेदारी मनु पर थोंप रहे हैं। विकृत व्यवस्थाओं का दोषी तो है परवर्ती समाज, किन्तु उसका अपमानरूप दण्ड मनु को दिया जा रहा है।

निष्कर्ष–

उक्त विवेचन के निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि मनु स्वायम्भुव आदिकालीन राजर्षि हैं। मूलतः मनुस्मृति उन्हीं की रचना है। उसमें समय–समय पर प्रक्षेप होते रहे हैं। वर्तमान मनुस्मृति में पाये जाने वाले परस्पर विरुद्ध, प्रसंग विरुद्ध, शैलीविरुद्ध, वेदविरुद्ध आदि श्लोक इस सत्य का ज्वलन्त प्रमाण हैं। आलोचक केवल आपत्तिजनक श्लोकों को ही उद्धृत करते हैं, मूल श्लोकों को उद्धृत नहीं करते और न यह बताते हैं कि उन्होंने दो विरोधी श्लोकों में एक आपत्तिजनक श्लोक को ही क्यों चुना? वस्तुतः वही प्रक्षिप्त श्लोक हैं। उन्हीं श्लोकों में जन्मना जातिवाद, शूद्रविरोधी और नारीविरोधी कथन पाये जाते हैं। वैदिक या मनु की वर्णव्यवस्था जन्मना जातिवाद पर आधारित नहीं है। जो लोग स्वयं को वैदिक या आर्य कहते हैं, उन्हें या तो जन्मना जातिवाद को नहीं मानना चाहिए अथवा स्वयं को वैदिक या आर्य कहना छोड़ देना चाहिए। हमें ऋषि दयानन्द के इस मार्मिक वाक्य को सदा स्मरण रखना चाहिए– "देखो, जातिविभाग होकर हम निर्बल हो गये है !" (उपदेश मंजरी ५)

सम्पर्क– छोटूराम मार्ग
आर्यनगर, झज्जर, हरियाणा

चतुर्मास पर्व व वेद प्रचार

वैदिक प्रवचन व वेद प्रचार महोत्सव दक्षिण कानडा आर्यप्रतिनिधि सभा तथा आर्यसमाज बालमठ मंगलपूरम् मंगलूर (कर्नाटक) में १० जुलाई से चतुर्मास के रूप में मनाया जा रहा है। यह कार्यक्रम दीपावली पर्यन्त चलेगा। इस अवसर पर प्रतिदिन प्रातः काल यज्ञ पं० गोविन्द भट्ट के ब्रह्मत्व में हो रहा है। पं० सुकुमार शास्त्री कामथ के आचार्यत्व में योग प्रशिक्षण चल रहा है तथा पं० खुशाल शास्त्री संस्कृत शिक्षा वर्ग चला रहे हैं। रात्रि में कर्मयोगी के सम्पादक स्वामी उमाशंकर सांख्याय जी का वेदोपदेश हो रहा है। इस कार्यक्रम का प्रसारण दूरदर्शन के चैनल सी.सी इण्डिया ने ६ बार तथा आल इण्डिया रेडियो ने तीन बार किया है। यह कार्य श्रीमती डा० अनन्त लक्ष्मी तथा डा० गायत्री रमणी के यशस्वी प्रयत्न से किया गया है।

वैदिक संहिताओं में आभूषण
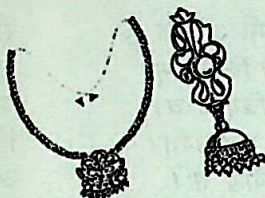
प्रो० डा० महावीर अग्रवाल

ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में आभूषण शब्द का उल्लेख आभूषण प्रियता एवं आभूषण निर्माण का स्पष्ट संकेत करता है। वेद में प्रार्थना की गई है–

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः।
तेषां पाहि श्रुधी हवम्।। ऋग् १.२.१

इसमें अरंकृत शब्द अलंकृत का प्राचीन रूप है। एक और शब्द 'आभरः' प्राप्त होता है, जिससे 'आभरण' शब्द बना है।

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वां असुरेभ्यः।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः।। ऋ. ८.६७.१

ऋग्वेद में सुवर्णकार का नाम भले ही प्राप्त नहीं होता, किन्तु उसके कर्म का संकेत अवश्य होता है–

निष्कं वाघा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः।
त्रिते दुष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि।
दद्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः।। ऋग् ८.४७.१५

अर्थात् हे आदित्य! स्वर्ग की पुत्री उषा में, स्वर्णकार अथवा माला बनाने वाले में जो दुःस्वप्न है अर्थात् चौर कर्म वह हमसे दूर रहे।

वस्त्रों के समान विविध प्रकार के आभूषणों से स्वयं को अलंकृत करना महिलाओं के समान पुरूषों की स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है। प्राचीन काल में स्त्री और पुरूष दोनों आभूषणों से प्रेम रखते थे।

निष्क– वेद में निष्क शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर उपलब्ध होता है।[1] यह कोई स्वर्णमुद्रा नहीं है। जिसका उपयोग वस्तु के क्रय–विक्रय के अवसर पर रुपयों की तरह किया जाता रहा है अपितु यह निष्क शरीर के आभूषण रूप में प्रयुक्त हुआ है, इसमें संदेह नहीं है। निष्कग्रीवा शब्द निश्चित रूप से कण्ठ में धारण करने वाले किसी आभूषण के होने की अभिव्यक्ति करता है। इस आभूषण का वर्णन इस प्रकार किया गया है–"जिस राष्ट्र में अज्ञान से भी ब्राह्मण पत्नी प्रतिबन्धित की जाती है उस राष्ट्र का वीर स्वर्णालंकार गले में धारण करके लड़कियों के सम्मुख नहीं जाता है।"[2] यह निष्क गोल अथवा चौकोर होगा जिसे धागे में पिरोकर माला के रूप में गले में पहिना जाता होगा।

रूक्स– एक अन्य आभूषण 'रूक्स' का वर्णन वेद में किया गया है।[3] जो ग्रीवा में धारण किया जाता था तथा वक्षस्थल तक लटक कर छाती की शोभा बढ़ाता था। शरीर की सुन्दरता बढ़ाने के लिए भाँति–भाँति के आभूषणों द्वारा वे मरुत् सुषमा बढ़ाते तथा हृदयों पर शोभा के लिए स्वर्णनिर्मित हारों को धारण करते हैं।[4] शतपथ ब्राह्मण में 'रूक्स' नामक आभूषण को डोरे में डाला हुआ होने का वर्णन किया गया है।[5]

मणि– ऋग्वेद में मणि शब्द प्राप्त होता है। इसका आधुनिक अर्थ है छेदा हुआ रत्न जो डोरा डालकर पहिना जा सके। निम्न मंत्र में अन्य आभूषणों के साथ ग्रीवा में धारण करने हेतु मणि की प्रार्थना की गयी है–

हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः।
–ऋग् १.१२२.१४

अर्थात् हे विश्वदेव! हमें हिरण्य का कर्ण का

१. ऋ. २.३३.१०, ८.४७.३, ५.१९.३, ७.५६.११ ।। २. नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः। यस्मिन्राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजाया अचित्या। अथर्व. ५.१७.१४।।
३. ऋ. १.६४.४, १६६.१०, २.३४.२, ४.१०.५।। ४. चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्मां अधि येतिरे शुभे। ऋ. १.६४.४।।
५. रूक्मपाशः। शत् ब्रा. ६.७.१.७

आभूषण तथा ग्रीवा के हेतु मणि की माला तथा रूपवान् पुत्र प्रदान करो। वेदों में हिरण्यमणि, संजयमणि, देवमणि, दर्भमणि, औटुम्बरमणि जमगिडमणि, वर्णमणि आदि का वर्णन है।

मोती–रत्नों में मोती का नाम ऋग्वेद में 'कृशन्' प्राप्त होता है। जो मनुष्य को आकर्षित करे उसे ही कृशन् कहा जाता है–

अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो वृहन्तम्।

–ऋग्. १.३५.४

मणि और मोतियों से निर्मित आभूषणों का प्रयोग होता था। मणियों को सूत्र में पिरोकर माला बनाई जाती थी। ऐसे मन्त्र भी हैं जिनसे रत्नों के जड़ें जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। स्त्रियों और पुरूषों के आभूषणों के समान वेद में अश्व आदि को भी आभूषणों से अलंकृत करने का वर्णन उपलब्ध होता है।

सिर. कान, ग्रीवा, हस्त, कटि आदि विभिन्न अंगों के लिए अलग–अलग प्रकार के आभूषण हुआ करते थे।

खादि– वेद में खादि नामक आभूषण का वर्णन भी है– 'ये मरूत बड़े–बड़े आभूषण धारण करने वाले नेतृत्व गुण से युक्त हैं।'[1] पैरों में धारण किये हुए आभूषण के लिए 'पत्सु खादयो' शब्द का व्यवहार किया गया है।[2] इससे पैरो में कड़े आदि की तरह धारण किये जाने वाले किसी आभूषण का 'खादि' शब्द से द्योतन होता है। इस आभूषण को कन्धे पर धारण करने का भी वर्णन है–

'हे मरुतो! तुम्हारे कंधों पर खादि नामक अलंकार हो।'[3]

प्रतिहस्त– जिस हाथ में आभूषण धारण किया हुआ होता है उसे हिरण्यपाणि कहकर सम्बोधित किया जाता था।[4] हाथ में धारण किये जाने वाले आभूषण को 'परिहस्त' कहते थे।[5]

कंकण– जैसे आजकल स्वर्ण कंकण धारण किया जाता है, यह उसी प्रकार का एक गोलचूड़ी की तरह का कड़ा रहा होगा। इस आभूषण को स्त्रियां धारण करती थीं तथा इससे गर्भाशय और पुत्रोत्पति का भी कोई सम्बन्ध माना जाता था, क्योंकि इस कंकण को लक्ष्य करके कहा –'हे कंकण ! गर्भ धारण के लिए योनि धारण कर।'[6]

स्रज–मोतियों के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि मोतियों की माला पहनी जाती थी।[7]

–स्रज (माला) का भी आभूषण के रूप में उल्लेख है।[8]

कर्णशोभन–कान के लिए जो सुवर्ण आभूषण थे उन्हें 'कर्णशोभन' कहते थे।[9]

कुरीर, ओपश– ऋग्वेद में स्त्रियों के मस्तक के आभूषणों में कुरीर तथा 'ओपश' का उल्लेख प्राप्त होता है यथा–

स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत्पुरोगवः।।

–ऋग्. १०.८५.८

उषा के तुल्य अनुरागवाली नव वधू जब अपने पति के साथ जाने को हो तो उसको उत्तम–उत्तम उपदेश दिये जाएं तथा उसे कुरीर तथा ओपस नाम के आभूषणों के सजाया जाये।

मोनियर विलियम्स ने कुरीर को एक प्रकार का स्त्रियों का मुकुट कहा है।[10] ओपश संभवतः मस्तक के चारों ओर लपेट कर पहिना जाता था। मोनियर विलियम्स नें इसे सिर का आभूषण कहा है।[11]

अंगूठी (आनूक)– ऋग्वेद में हिरण्यपाणि शब्द का प्रयोग मिलता है। अंगूठी के लिए एक विशेष शब्द 'आनूक' प्राप्त होता है–

उतत्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासौ विदथस्यरातौ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूक मर्यो वपुषे नार्चत्।।

–ऋग्. ५.३३.६

शेष ५६ पृष्ठ पर

१. ऋ. १.६४.१०. १.८७.८ २. ऋ. १.१६६.६. ५.५४.११ ३. अंसेष्वामरूतः खादयो वः । ऋ. ६.५६.१३
४. हिरण्यपाणिं सवितारम्। अथर्व.३.२१.८ ५. अथर्व. ६.८१.१–२–३
६. परिहस्त विधारय योनिं गर्भाय धातवे। अथर्व. ६.८१.२ ७. ऋग्. १०.६८.१ ८. ऋग्. ४.३८.६. ५.५३.४, ८.४७.१५
९. ऋग्. ८.७८.३ १०. मोनियर विलियम्स, संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरीपृ. २३६. ११. मोनियर विलियम्स वही, पृ. १८६

रूपये की माँ पहाड़ चले
(Money make mere go)

मञ्जु प्रकाश

शीर्षक पढ़कर आपको अजीब सा लगता होगा कि रूपये की मां पहाड़ चले इसका क्या मतलब? बहुत सरल भाषा में कहा जाय तो यही होगा कि पैसा है तो सब कुछ कर सकते हैं। इज्जत देना हो इज्जत लेना हो कहने का तात्पर्य है आज सब जगह रूपये का ही बोलबाला हैं, सदियों से पैसा महत्वपूर्ण रहा है और आज के युग में और भी मूल्य बढ़ गया है इसलिए रूपया क्यों न महत्वपूर्ण हो, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरूषार्थों में अर्थ दूसरे नम्बर पर है। उपदेशकों के उपदेशों पर मत जाइये आप खुद ही सोचिये कि वर्तमान युग में क्या पैसे के बिना गुजारा है?

किसी की मदद करिये फिर पैसे वापस मांगिये तो तनाव शुरू, कोई जल्दी देना हीं नहीं चाहता कितने पुराने दोस्त पैसे की वजह से एक दूसरे के दुश्मन बन गये। कितने सम्बन्धों में दरारें पड़ गई। पैसे के पीछे हर कोई भागा जा रहा है। किसी भी तरह से पैसा घर में आना चाहिए चाहे देश से गद्दारी करके, चाहे गलत ढंग से, दूसरों की जिन्दगी तबाह करके, किसी का धन हड़प कर चाहे कुछ हो पैसा आना चाहिए।

आइये! इक नजर रूपये की महत्ता पर डालें– जब कहावत सुनी थी कि रूपये की मां पहाड़ चले तब इतनी गहराई से ये बात समझ में नहीं आइ थी लेकिन धीरे–धीरे समय के साथ–साथ इस कहावत को सच देख लिया। घर में दो चार बेटे हैं तो जो कमासुत है उसकी ज्यादा पूछ होती है। रिश्ते भी पैसे से बनने लगे हैं। बहन के घर भाई खाली हाथ चला जाय तो एक दो बार के बाद उसकी कोई पूछ नहीं है। रिश्तेदार भी धनिक लोगों से ही दोस्ती करना चाहते हैं। उनके साथ सम्बन्ध बढ़ाना चाहते हैं बहुत से लोग पैसा देखकर ही दोस्ती करते हैं।

पैसे वाले घर का पागल व्यक्ति भी बुद्धिमान समझा जाता है, पैसा तो हर बुराई को ढक दे रहा है और आश्चर्य है, हर व्यक्ति इस बात को स्वीकार करके जीता चला जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में नौकरी मिलनी हो तो डोनेशन चाहिए। घर में बेटी हो गई तो अपनी जिन्दगी के खर्च में से कटौती करके पैसे रखना शुरू कीजिये क्योंकि पैसे के बिना अच्छा वर नहीं मिलेगा। अपने बुढ़ापे के लिए धन चाहिए धन नहीं रहेगा तो बेटे पूछेंगे नहीं। आजकल तो बूढ़े मां बाप को वृद्धाश्रम में भेज दिया जा रहा है कि उनका खर्च कौन सहे। किसी की दोस्ती में उपहार न दीजिये तो कोई महत्व नहीं चाहे कितना भी प्यार का दम भरिये। यह है अपने देशी (ढेठ) भाषा में रूपये की महत्ता।

अब थोड़ा साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया जाय तो अर्थ शब्द प्रयुक्त होगा। ये अर्थ शब्द जो है इससे भावनात्मक स्तर पर रिश्ते जुड़े हैं, समाज जुड़ा है देश का भविष्य जुड़ा है। धर्म के बाद अर्थ है, धर्म का पालन करते हुए अर्थ की ओर बढ़ना है। वेदवाणी भी धन की महिमा गाती है। जगह–जगह वेदों में धन अर्जित करने के मंत्र हैं। धन ऐश्वर्य के लिये बहुत सारे प्रार्थना मन्त्र हैं वेद धन ऐश्वर्य के स्वामी बने रहने की बात कहते हैं।

परमात्मा ने वेदों के द्वारा धन का उपयोग बताया है। दीन दुःखियों की सहायता करना, कुंए खुदवाना, तालाब वगैरह बनवाना इत्यादि।

आप सोचते होंगे कि विषय बदल गया लेकिन नहीं फिर से वापस लौटते हैं रूपये की

मां पहाड़ चले। एक शब्द या एक वाक्य के कई अर्थ हो सकते हैं। दूसरी चीज है कि कौन व्यक्ति किस ढंग से सोचता है सब का अपना-अपना नजरिया है। रूपये की मां पहाड़ चले यानि पैसा है तो कुछ भी किया जा सकता है। जी हाँ, अब आप वैदिक अर्थ में कहिये कि पैसा है तो लोक परलोक, सुधारा जा सकता है। तभी तो रूपये की मां पहाड़ चलेगी सार्थक होगा।

पैसा है तो उसे गलत कामों न खर्चकर परिवार के कल्याण के लिए, समाज के लिए, देश के लिए भी कुछ खर्च करें। समय-समय पर टैक्स वगैरह देते रहना चाहिए। हजारों जवान सीमा पर तैनात हैं शत्रुओं से रक्षा करने के लिए, कितने शहीद हो रहे है क्या उनके प्रति हमारा कोई कर्त्तव्य नहीं है। जो टैक्स हम सरकार को देते हैं वो इन्हीं सब कार्यों में खर्च होता है। वेद में जगह-जगह कर वसूल करने की बात कही गई है। राज्य व्यवस्था तभी तो सही होगी। आज देश में मंहगाई के साथ-साथ बेरोजगारी भी बढ़ गई है। गरीबी, भुखमरी से तंग आकर आत्महत्या कर लेना आम बात हो गई है।

कौटिल्य ने अर्धशास्त्र की रचना ही कर डाली। अर्थशास्त्र की नीति कहती है कि समाज का धनिक वर्ग अगर पैसा संचय करके रखता है तो देश की अर्थ व्यवस्था डगमगा जायगी। वेद भी आज्ञा देते हैं कि धनिक वर्ग समाज की ओर ध्यान दे। जो उनके आश्रित है उनकी पालना करें। समय-समय पर सरकार को हर वर्ग टैक्स देते रहें। कर की चोरी करना भी पाप है। देश के प्रति किया गया अपराध है। ये छोटे-छोटे अपराध प्रारब्ध बनकर हमारे जीवन को दुःख में डुबोते हैं ये लोग नहीं समझ पाते।

रूपये की महत्ता दर्शानी थी वो आपने देखा अब ये आप के वश में है कि आप इसके महत्व को समझ सके हैं या नहीं।

— भदोही

पृष्ठ ५५ का शेष

कटि के आभूषण– कटि पर न्योचनी, वरुणापाश तथा हिरण्यवर्तनी धारण की जाती थी। न्योचनी का अर्थ मोनियर विलियम्स ने करधनी किया है।[१२] इस शब्द के विवाह के मन्त्रों में प्राप्त होने से करधनी अर्थ की पुष्टि होती है।

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम्।।

–ऋग्. १०.८५.६

एक मन्त्र में रुद्रा को हिरण्यवर्तनी कहा है, जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि यह शब्द हिरण्य को करधनी हेतु प्रयुक्त होता था–

आ नो रत्नानि बिभ्रातावश्विना गच्छतं युवम्।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम्।।

–ऋग्. ५.७५.३

करधनी के अर्थ में 'रास्ना' शब्द का प्रयोग भी मिलता है।[१३]

इनके अतिरिक्त बहुत से आभूषणों का वर्णन किया गया है। हिरण्यवसा, हिरण्यदंन्त, हिरण्यश्रृंग, हिरण्यवाशी आदि शब्द स्वर्णाभूषणों की लोकप्रियता के द्योतक हैं।

यजुर्वेद में 'मणिकार' तथा 'हिरण्यकार' का उल्लेख है, जिनका काम नाना प्रकार के आभूषण बनाने का था।[१४] रजत (चांदी) से भी अनेक प्रकार के आभूषण बनाये जाते थे। इस प्रकार सुवर्ण, रजत, मणि, रत्न, मोती आदि विविध धातुओं से निर्मित आभूषणों की प्रचुर मात्रा में विद्यमानता सिद्ध करती है।

–हरिद्वार

---

१२. मोनियर विलियम्स, संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी पृ. ५७३ १३. यजु. १.३० १४. यजु. ३०.७

विद्या का अभिलाषी बालक पाणिनि

ब्र० राजेन्द्रार्यः

संसार के मानचित्र में महर्षि पाणिनि संस्कृत व्याकरण के एक महान् पण्डित आचार्य के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनके विषय में एक किंवदन्ती है कि इतिहास का अध्ययन करने से पता चलता है दाक्षीपुत्र पाणिनि की बचपन में बुद्धि पढ़ने–लिखने में तीव्र नहीं थी। विद्यार्थी जीवन में जब वह गुरूकुल आश्रम में अपने सहपाठियों के साथ विद्या अध्ययन के लिए उपस्थित हुए तो बालक पाणिनि की गणना कमजोर छात्रों में होती थी। संस्कृत पाठशाला के नियमानुसार गुरू जी कक्षा में समस्त छात्रों को एक समान ही पाठ पढ़ाते थे तथा अगले दिवस जब पाठ सुनते थे तो प्रायः पाणिनि को छोड़कर अन्य सभी छात्र अपना–अपना पाठ सुना देते थे। बालक पाणिनि को पाठ याद न होने के कारण गुरू जी के समक्ष उपस्थित होना पड़ता था। गुरू जी के समझाने पर भी वह अपना पाठ याद कर नहीं सुना पाये तो एक दिवस गुरूजी बालक के हित को ध्यान में रख दण्ड देने के लिए उद्यत हुए। गुरू जी ने कहा पाणिनि ! हाथ निकालो ! आज आपको दण्ड मिलेगा। विनम्रता पूर्वक पाणिनि ने छड़ी से मार खाने के लिए चुपचाप अपना दक्षिण हस्त आगे बढ़ा दिया। गुरूवर की दृष्टि जब पाणिनि के हस्त पर पड़ी तो उन्होंने हाथ में उठाई छड़ी को रोक दिया और निराशाजनक स्वर में बोले– बेटा तुझे तो दण्ड देना ही व्यर्थ है। तब बालक पाणिनि ने हाथ जोड़कर पूछा– गुरू जी आपने हमें दण्ड क्यों नहीं दिया? गुरूवर करूणा (दया) भाव से बोले– शिष्य ! मारने का लाभ उसे है जिसके भाग्य में विद्या हो और जीवन में पढ़–लिख सकता हो।

बालक पाणिनि ने पुनः विनम्र भाव से पूछा–गुरूवर, क्या सचमुच मेरे भाग्य (प्रारब्ध) में विद्या नहीं है और क्या मैं कठिन परिश्रम करने पर भी बिल्कुल नहीं पढ़–लिख सकता ? गुरूजी ने उसकी हस्त रेखाओं को सूक्ष्मता से अवलोकन करते हुए कहा– देखो, तुम्हारे हाथ में अभी तक विद्या की रेखा ही नहीं है। इसलिए तुम कैसे पढ़ सकते हो? आपके भाग्य में जब विद्या लिखी ही नहीं है तब दण्ड देने से भला क्या लाभ है ?

गुरूवर की इस प्रकार की बातें सुनकर बालक पाणिनि को बहुत दुःख हुआ। यह दुःख उस डण्डे द्वारा दिये जाते दण्ड से कहीं ज्यादा था क्योंकि गुरूवर ने स्पष्ट रूप से कह दिया था कि तेरे हाथ में तो विद्या की रेखा ही नहीं है। इसका तात्पर्य तो यही था कि पाणिनि कितना भी पुरुषार्थ क्यों न करे वह अब जीवन में पढ़–लिखकर विद्वान् नहीं बन सकता।

बालक पाणिनि के आत्मसम्मान की यह घटना थी। इसलिए तत्काल उसने दृढ़ सङ्कल्प किया कि मैं अपने कठिन परिश्रम के द्वारा हाथ में विद्या की रेखा बनाकर छोडूंगा और विद्या प्राप्त करके विद्वान् बनकर दिखलाऊँगा। पाणिनि इसी सङ्कल्प को लेकर जीवन पथ पर अपने कदम आगे बढ़ाते हुए गुरूवर से किसी प्रकार की वार्त्तालाप न कर सर्वप्रथम आलस्य एवं प्रमाद का परित्याग किया तथा प्रतिदिन पढ़ने में अधिक परिश्रम करने लगा। अनुशासित एवं दृढ़व्रती बालक पाणिनि अब जो पाठ पढ़ता जब तक कण्ठस्थ न कर लेता तब तक भोजनादि

ग्रहण न करता और न ही शयन के लिए बिस्तर पर सोने को जाता। रात्रि को आश्रम के जब सभी छात्र सो जाते तो पाणिनि दीपक के प्रकाश में अकेले ही पढ़ता रहता। कभी–कभी तो सारी रात्रि उसकी पढ़ने में ही व्यतीत हो जाती। भोजन एवं निद्रा न लेने पर भी ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करने से उसके चेहरे पर जरा भी शिथिलता के भाव नहीं रहते। प्रातःकाल वह सर्वप्रथम गुरूवर के चरणों में आशीर्वाद लेने हेतु उपस्थित होता और मानसिक रूप से प्रसन्न रहता क्योंकि उसने सभी पाठों को ठीक तरह से याद कर रखा था।

जिस पाणिनि को कभी गुरू जी ने विद्या पढ़ने के अयोग्य ठहरा दिया था। श्रम एवं सङ्कल्प के सहारे उसने अपने हाथ में विद्या की रेखा को कुछ दिनों में ही साकार करके दिखा दिया। थोड़े दिनों तक तो अपने साथियों से पीछे पढ़ने में रहा परन्तु धीरे–धीरे उसने अन्य छात्रों के बराबर के स्तर को प्राप्त किया। आगे चलकर वह सभी छात्रों को पीछे छोड़कर प्रथम स्थान पर आ गया। इस प्रकार से वह गुरूजी का सर्वप्रिय छात्र ही नहीं बना, अपितु संसार का सबसे उद्भट संस्कृत वैयाकरण बन गया।

सदाचारी मेधा सुसम्पन्न पाणिनि ने उस समय के प्रचलित व्याकरण में जिन त्रुटियों को देखा उन्हें दूर कर एक नूतन शब्दशास्त्र अर्थात् व्याकरण की रचना लगभग ४००० सूत्र में की। जो पाणिनीय व्याकरण या "अष्टाध्यायी" ग्रन्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह अष्टाध्यायी केवल व्याकरण के नियमों को ही बताने वाली नहीं अपितु प्राचीन भूगोल, इतिहास, समाजशास्त्र, यज्ञ की मीमांसा, कम्प्यूटर के सिद्धान्त आदि विषयों के ज्ञान के लिए भी अद्भुत नियमों का संग्रह है। महर्षि पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में लिखा है– *"तत्राशक्यं वर्णेनाप्यनर्थकेन भवितुम्, किं पुनरियता सूत्रेण"* अर्थात् पाणिनि का एक अक्षर भी व्यर्थ नहीं, सूत्र का तो कहना ही क्या।

आज ज्ञान–विज्ञान के युग में देश का दुर्भाग्य ही है कि लार्ड मैकाले की कान्वेन्ट शिक्षा पद्धति से शिक्षित प्रतिभायें कह रही हैं कि "हम ऐसे फेनेटिक नहीं है" जो संस्कृत भाषा एवं अष्टाध्यायी के प्रति श्रद्धा रखें। जबकि विदेशी लोग संस्कृत एवं अष्टाध्यायी की वैज्ञानिकता के प्रति नतमस्तक होते हुए दिखलाई पड़ रहे हैं। इसीलिए तो नासा के कम्प्यूटर वैज्ञानिक अष्टाध्यायी की भाषा वैज्ञानिकता एवं नियमों का अध्ययन करने के लिए पुरूषार्थ कर रहे हैं। कम्प्यूटर वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि "पाणिनि व्याकरण इतना विस्तृत है कि पाँचवी पीढ़ी के कम्प्यूटर की हार्ड डिस्क भी उसके लिए कम है।"

वर्तमान समय में प्रगतिशीलता की बात करने वाली प्रतिभाओं की जानकारी के लिए यहाँ पर पाश्चात्य विद्वानों के विचार उद्धृत हैं जिससे संस्कृत भाषा एवं अष्टाध्यायी व्याकरण की महत्ता को समझने में सहायता मिल सकती है–

१. प्रोफ़ेसर मोनियर विलियम– "संस्कृत व्याकरण उस मानव मस्तिष्क की प्रतिभा का आश्चर्यतम नमूना है। जिसे किसी देश ने अब तक सामने नहीं रखा है।"

२. सर डब्ल्यू. हण्टर– "संसार के व्याकरणों में पाणिनि का व्याकरण चोटी का है। उसकी वर्णशुद्धता, भाषा का धात्वन्वय– सिद्धान्त और प्रयोग विधियाँ अद्वितीय एवं अपूर्व हैं....... यह मानव मस्तिष्क का अत्यन्त महत्वपूर्ण आविष्कार है।"

व्याकरणसूर्य स्वामी दण्डी विरजानन्द सरस्वती ने १६ वीं शताब्दी में अपने सुयोग्य शिष्य आदित्य ब्रह्मचारी, वेदज्ञ, राष्ट्रभक्त स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा महामुनि आचार्य पाणिनि एवं उनकी महान् कृति 'अष्टाध्यायी' का परिचय विश्व के लोगों को फिर से कराया। स्वामी विरजानन्द सरस्वती ने महर्षि पाणिनि एवं पतञ्जलि की प्रशंसा में एक श्लोक की रचना भी की–

अष्टाध्यायी महाभाष्ये द्वे व्याकरणपुस्तके।
अतोऽन्यत् तु यत् सर्वं तत् सर्वं धूर्तचेष्टितम्।।

अर्थात् अष्टाध्यायी– महाभाष्य ही व्याकरण

के दो ग्रन्थ हैं अन्य समस्त लघु–मध्य–सिद्धान्त कौमुदी ग्रन्थ धूर्तों की रचनायें हैं।

विद्या की नगरी काशी के पण्डित सभा के अध्यक्ष श्री गोपाल शास्त्री दर्शनकेशरी ने भी महर्षि पाणिनि की प्रशस्ति में लिखा है–

तपस्यता पाणिनिना महात्मना, क्रमोपनद्धं वटु–बुद्धिवर्द्धकम्।
समर्पितं व्याकृतिरत्नमद्भुतं,बहूपकारि क्व नु हापितं बुधैः।।

महान् आत्मा महर्षि पाणिनि ने बालकों की बुद्धि बढ़ाने वाली, अत्यन्तोपकारी क्रमबद्ध अष्टाध्यायी रूपी व्याकरण रत्न को बनाया था। खेद है कि पण्डितों ने इसे छोड़ दिया।

संस्कृत भाषा एवं अष्टाध्यायी के पुनरूद्धार के लिए जो योजना स्वामी दयानन्द सरस्वती ने बनाई उसका दिग्दर्शन उनके वैचारिक क्रान्तिकारी ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' एवं ऋग्वेदा–दिभाष्यभूमिका में द्रष्टव्य है।

भारत की प्राचीन धर्म–संस्कृति की रक्षार्थ एवं ऋषियों के ऋण से उऋण होने के लिए देश की जो प्रतिभायें पाणिनीय व्याकरण अर्थात् 'अष्टाध्यायी' के माध्यम से बालक–बालिकाओं को सुशिक्षित करने के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर स्वामी दयानन्द सरस्वती के अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए दृढ़ सङ्कल्पित हैं। ऐसी समस्त प्रतिभाओं का प्रयास सराहना एवं स्तुत्य योग्य है। महाभाष्य में महर्षि पतञ्जलि ने अपनी प्राचीन धरोहर के संरक्षण को ध्यान में रखकर ही तो लिखा है– *'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मःषडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति।'*

–शक्तिनगर, सोनभद्र (उ०प्र०)

पक्षी हमारी तरह बोलते थे!

हाँ, पक्षी पहले हम लोगों की तरह बोलते थे। आदमियों से बातें करते थे। लोगों को उनका संदेश देते थे, उनका संदेश अन्यत्र पहुँचाते थे। वे बच्चों को दूर देश की कहानियाँ सुनाते थे। पक्षियों से बातें करके लोगों को बड़ा आनन्द मिलता था।

पक्षी राजा को देश भर का समाचार भी देते थे। राजा समाचार जानकर उसके आगे का आदेश भेजवाता था। एक राजकुमार नया–नया राजा बना। वह बहुत क्रोधी स्वभाव का था। उसने चिड़ियों को भगा दिया। पक्षी राजा के पास जाने में डरने लगे किन्तु आपस में बातें तो करते ही थे। एक बार तोते ने एक बढ़िया लतीफा सुनाया सुनकर सभी पक्षी कहकहे लगाने लगे। शोर से राजा सोते से जाग पड़ा। जानते हो बच्चों, राजा ने नींद में खलल डालने की सजा क्या दी? उसने सभी पक्षियों को पिंजड़े में बन्द कर दिया, उनका दाना–पानी भी बन्द कर दिया। पंछी सहम गये। उन्होंने आदमियों की भाषा बोलना छोड़ दिया। तब से पक्षी मनुष्यों को देखकर भाग जाते, उड़ जाते हैं। बच्चों सोचो, अगर आज भी पक्षी बोलते तो कितना मजा आता।

कु० नव्या द्विवेदी

–सरायगोबर्धन, वाराणसी

महान् गणितज्ञ

डा० श्री निवास रामानुजन्

अभिलाषा गुप्ता

मद्रास के पोर्ट ट्रस्ट कार्यालय के चेयरमैन सर फ्रांसिस स्प्रिंग ने एकाएक निरीक्षण किया। मध्यावकाश हो चुका था। सभी कर्मचारीगण अपने-अपने स्थान से उठ चुके थे। उन्होंने देखा एक कोने में एक पतला-दुबला सा व्यक्तित्व वाला नया कर्मचारी अपने स्थान पर बैठे २ कुछ लिख रहा था। पास में ही एक कागज का टुकड़ा पड़ा हुआ था। उन्होंने उसे उठाकर पढ़ा उसमें गणित के कठिन प्रश्नों का हल किया हुआ था। उसे देख वे आश्चर्य चकित रह गये और उस व्यक्ति के पास पहुँच कर उन्होंने कहा-तुमको तो गणित की दुनिया का बादशाह होना चाहिये। जानते हो, उस नव युवक का नाम था-रामानुजन।

रामानुजन का जन्म २२ दिसम्बर सन् १८८७ को मद्रास प्रान्त के इरोद नामक गाँव में एक निर्धन ब्राह्मण के घर में हुआ था। उनके पिता श्री निवास अयगर थे इस प्रकार इनका पूरा नाम श्री निवास रामानुजन अयगर था। बाल्यकाल से ही रामानुजन अत्यन्त मेघावी थे सभी कक्षाओं में वे सर्वोच्च अंक प्राप्त करते थे। गणित से उनको नैसर्गिक प्रेम था। गणित के अतिरिक्त दूसरे विषय में उनका मन नहीं लगता था फलतः एम० ए० की परीक्षा में वे अनुत्तीर्ण हो गये और धनाभाव के कारण उच्च शिक्षा के लिए सभी मार्ग अवरुद्ध हो गये।

गणित सम्बन्धी उनकी प्रतिभा जन्मजात थी। कुछ ऐसी ईश्वरीय देन थी कि बाल्यावस्था में ही पेड़ों की सही ऊँचाई बता देना। भेड़ों की झुण्ड को देखकर पलक झपकते ही उनकी सही संख्या बता देना उनके लिए समान्य सी बात थी। लोग उनकी इस प्रतिभा को देखकर चकित रह जाते थे।

पढ़ाई छूट जाने के बाद भी गणित के प्रति उनकी रुझान कम नहीं हुई। गणित के कठिन से कठिन सूत्रों का हल ढूंढना उनकी दिनचर्या का अंग था। गणित के प्रसिद्ध विद्वान् 'शूब्रिजकर' की पुस्तक उस समय सबके लिये एक पहेली बनी हुई थी। इसमें अंक गणित, बीजगणित, त्रिकोणमिति के साथ उच्चगणित के कठिन से कठिन सूत्रों का समावेश था। रामानुजन ने इस दुरूह कार्य को बिना किसी की सहायता के हल निकाला जिससे प्रभावित हो सर फ्रांसिस स्प्रिंग ने अपने मित्र की सहायता से इंग्लैण्ड बुला लिया। गणित के क्षेत्र में इनकी महान् सेवाओं के लिये इंग्लैण्ड की विख्यात विद्वत्सभा रायल सोसायटी ने इन्हें ससम्मान अपना फेलो नियुक्त किया। आज भी रायल सोसायटी का फेलो होना किसी भी विद्वान् के लिये गौरव की बात मानी जाती है। इंग्लैण्ड की जलवायु इनके लिये अनुकूल नहीं रही धीरे-धीरे बीमारी ने आ घेरा और गणित का यह नक्षत्र बत्तीस वर्ष की अल्पायु में २६ अप्रैल १९२० को सदा के लिये अस्त हो गया।

उनका जीवन हम सबके लिये आदर्श व अनुकरणीय था। विदेशी विद्वान् भी उनकी सरलता सज्जनता और विद्वत्ता के आगे नतमस्तक हो जाते थे। हम भारतीयों को ऐसे गणितज्ञ विद्वान् पर गर्व हैं।

-सिकरौल, वाराणसी

आदर्श शुभ परिणय

आयु० ऋचा एवं चि० विवेक कुमार साहा

वैदिक धर्मानुरागी आर्यश्रेष्ठ डा० एस०पी० गुप्त व श्रीमती मञ्जु प्रकाश भदोही की ज्येष्ठ पुत्री आयु० ऋचा, कोलकातानिवासी चि० विवेक कुमार साहा के साथ ७ जुलाई को मधुमय व उल्लासमय वातावरण में स्नेहिल बन्धन में बंध गये। पातिव्रत धर्म. की प्रतिमूर्ति श्रीमती मञ्जु प्रकाश मनसा वाचा कर्मणा महर्षि दयानन्द व आर्यसमाज के प्रति समर्पित हैं। संस्थाओं गुरूकुलों तथा पुस्तकादि प्रकाशन के लिये आप पवित्र दान करती रहती हैं तथा अन्यों को भी यथासम्भव निष्काम भावना से प्रेरित करती हैं। वैदिक त्रैमासिक पत्रिका "अवनी" की आप उपसम्पादिका भी हैं।

आपकी ज्येष्ठ पुत्री का शुभ विवाह अपने आप में अद्वितीय था। शास्त्र की मान्यतानुसार गृहस्थाश्रम में प्रवेश के अभिलषुक जनों को कम से कम एक वेद का अध्ययन अनिवार्यरूप से करना चाहिये फलतः समस्त वैवाहिक मांगलिक कार्यक्रम का शुभारम्भ आपने कर्मकाण्ड के प्रतिपादक वेद यजुर्वेद शतक के पारायण से किया।

बिना किसी बाह्य प्रदर्शन तथा बाह्याडम्बर के मात्र शहनाई वादन के साथ वरयात्रा अपने सुनिश्चित समय पर द्वार पर पहुँची। द्वारचार के अवसर पर वर यात्रियों का भव्य स्वागत किया गया। सम्पूर्ण संस्कार, संस्कार विधि के विधानानुरूप आदर्श वातावरण में आर्यविद्वान् वाग्मीप्रवर डा० ज्वलन्त कुमार शास्त्री जी के आचार्यत्व में सम्पन्न हुआ। शास्त्री जी की संस्कार शैली से सभी जन मन्त्रमुग्ध रहे। इस शुभ अवसर पर पा.क.म. की प्राचार्या पं० मेधा देवी, सुश्री सूर्या देवी, वैदिक पत्रिका अवनी की प्रधान सम्पादिका डा० माधुरी रानी 'तर्कप्सुका', आर्यसमाज लल्लापुरा के पदाधिकारीगण तथा सम्भ्रान्त नागरिक उपस्थित हुए। अवनी परिवार सौ०का० ऋचा तथा चि० विवेक साहा को सर्वसौख्यसम्पन्न परिणय जीवन की मंगल कामना करता है।

७३ हजार वर्षों बाद मंगल ग्रह पृथ्वी के सर्वाधिक निकट २७ अगस्त ०३ को रहा और अब पुनः २८४ वर्षों बाद दिखेगा–

तारों की दुनिया और सौरमण्डल ने उस समय इतिहास रचा जब ७३ हजार वर्षों बाद २७ अगस्त २००३ बुधवार अपराह्ण ३ बजकर २१ मिनट पर मंगल ग्रह पीली नारंगी तश्तरी के रूप में पृथ्वी के सबसे निकट चमकदार दिखाई दिया। इस समय दोनों ग्रहों की दूरी ५० करोड़ ५८ लाख कि.मी. थी। यह दृश्य वैज्ञानिकों के लिये कौतूहल का विषय बना रहा। मंगलग्रह ही एकमात्र ऐसा ग्रह है जिसे नंगी आँखों से देखा जा सकता है। सबसे अधिक ज्योतिष्मान् ग्रह शुक्र सहित अन्य सभी ग्रह सूर्य के अधिक समीप होने के कारण दिखाई नहीं पड़ते। अब दोनों के बीच इतनी समीपता २८४ वर्ष बाद यानि २६ अगस्त २२८७ के आस–पास पुनः रहेगी। जब यह इस बार की तुलना में ७० हजार कि.मी. और नजदीक होगा।

यह ग्रह आकार में पृथ्वी से छोटा है और इसके गोले का व्यास इसका आधार यानी करीब ६८०० कि.मी. है। सुर्ख हल्के भूरे गेरूवे रंग वाले इस विचित्र ग्रह पर एवरेस्ट से तीन गुना ऊँचा ज्वालामुखी है। कहते हैं इसकी चाल काफी मस्त है। आकाश में चलते–चलते कभी–कभी यह उल्टी दिशा में चलता दिखाई देता है।

महिलाओं में नेतृत्व–क्षमता पुरूषों से अधिक–

शिकागो की नार्थ वेस्टर्न यूनिवर्सिटी (इलीनॉयस) ने सर्वेक्षण कर दावा किया है कि किसी संस्थान या पेशे में यदि महिला प्रमुख है तो वह पुरूष की तुलना में नेतृत्व शैली अधिक से अधिक प्रयोग करती है। महिलायें हर परिस्थिति में मुस्कुराती रहती हैं फलतः कर्मचारीगण दूने उत्साह के साथ काम करते हैं इससे कर्मचारियों की कार्यक्षमता निखर कर सामने आती है।

अध्ययन में यह भी कहा गया है कि महिला प्रमुख के नेतृत्व में कोई भी संस्थान सफलता की बुलन्दी पर पहुँच सकता है ऐसा इसलिये होता है क्योंकि महिलायें काम में छोटे–बड़े का अन्तर भूलकर सहयोगी का हाथ बँटाने में भी नहीं हिचकती हैं और तो और जब कोई कर्मचारी या सहयोगी नया काम करता है तो वह उसे उत्साहित भी करती हैं। नार्थ वेस्टर्न यूनिवर्सिटी के मनोवैज्ञानिक प्रोफेसर एलिस एंग्लो का कहना है कि अध्ययन में महिला और पुरूष के मध्य प्राकृतिक कार्य क्षमता में अन्तर होना स्वाभाविक है पर जहाँ तक नेतृत्वकर्ता का प्रश्न है उसमें महिला अपने कार्य को पूरी लगन और उत्साह के साथ करती है अतः दोनों के प्रबन्धन में अन्तर है। महिला प्रबन्धक सभी चुनौतियों को हँसते–हँसते कर लेती है।

स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक अमेरिका की संस्था द्वारा सम्मानित–

अमेरिका देश की एक विश्वस्तरीय संस्था (A.B.I.) "अमेरिकन बायोग्राफिकल इंन्स्टीट्यूट" ने स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक को "वर्ष २००३ के व्यक्ति" (Man of the year-2003) नामक प्रमाण पत्र द्वारा सम्मान प्रदान किया है। यह संस्था विश्व के सुप्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवनी प्रस्तुत करने में एक प्रामाणिक एवं अग्रणी संस्था है। इस संस्था के उक्त प्रमाण पत्र में लिखा है कि पूज्य स्वामी सत्यपति जी एक विशिष्ट गुणसम्पन्न प्रभावशाली व्यक्ति हैं, जिन्होंने समाज के समक्ष उत्तम आदर्शों को प्रस्तुत किया है उनके जीवन तथा कार्यों से न केवल भारत देशवासी अपितु विदेशी जन भी प्रभावित हुए हैं।

गतांक से आगे...

हमारा अवनी परिवार

श्री डी.बी. अशोक
एडवोकेट
तहसील रोड, वाराणसी

श्री एच.एन. सिंह
विद्युत विहार
शक्तिनगर, सोनभद्र

श्री शुभ नारायण गुप्ता
नई बस्ती, सूरज सिनेमा के पीछे
आजमगढ़

श्रीमती रामप्यारी राय
प्रधानाचार्या
श्री अग्रसेन कन्या इण्टर कालेज
आजमगढ़

डा० कपिलदेव राय
द्वारा– बिद्रो ग्लास इम्पोरियम
आजमगढ़

डा० पीयूष राय
कालीचौरा, रैदोपुर
आजमगढ़

श्री कुमार बिष्ट
सम्पादक, पथिक संदेश
नई रेलवे रोड, जालन्धर

श्री एस.आर. शर्मा
आई.बी.पी. कालोनी
जयन्त (सीधी)

कु० अभिलाषा गुप्ता
पुत्री– श्री प्रियव्रत गुप्त
सिकरौल, वाराणसी

कु० वन्दना गुप्ता
पुत्री– श्री सत्यव्रत गुप्त
सिकरौल, वाराणसी

क्रमशः ...

निष्पक्ष वैदिक त्रैमासिक पत्रिका

अवनी

के आजीवन सदस्य

श्रीमती वेदवती शास्त्री

पर्यवेक्षिका- महात्मा फुले हाईस्कूल
बाबा नगर, नान्देड़

कु० विद्युल्लता शास्त्री

स्नातिका- अभियन्ता, विद्या शाखा
इलेक्ट्रानिक्स एण्ड टेलीकम्युनिकेशन, नान्देड़, (महा.)

श्री मोहनलाल कुशवाहा

सुपुत्र- श्रीराम अधार जी
माधोपुर, वाराणसी

श्रीमती तारा देवी

धर्मपत्नी- श्री मोहनलाल कुशवाहा
कुशवाहा अतिथि निवास समिति, वाराणसी

हम सब आभारी हैं अवनी परिवार

रजि. सं. UPHIN/2000/2292

संख्या के सिद्धान्त पर कार्य करने वाले महान् गणितज्ञ

डा० श्री निवास रामानुजम्

आविर्भाव	तिरोभाव
२२ दिसम्बर १८८७	२६ अप्रैल १९२०

स्वामिनी, मुद्रक एवं प्रकाशक – माधुरी रानी द्वारा पारस मुद्रण, नरायनपुर, भोजूबीर, वाराणसी से मुद्रित एवं एस. २/५०३, क १-४ सिकरौल, वाराणसी से प्रकाशित।